अक्तूबर-दिसंबर, 2014
ISSN:2320-7736

विज्ञान गरिमा सिंधु

अंकः 91

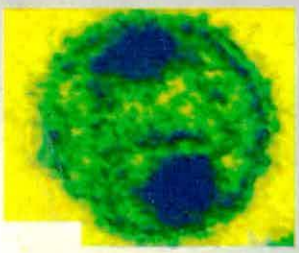

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

ISSN No.: 2320-7736 (Print)

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक - 91
अक्तूबर- दिसबंर, 2014

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक सहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यूनतम राशि 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपए है। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    डॉ. अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली – 110066

11. अपने लेख E-mail द्वारा तथा CD में भी (फॉन्ट के साथ) भेज सकते है।
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइट : www.cstt.nic.in
कापीराइट © भारत सरकार 2014
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली –110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, पश्चिमी खंड–7,
रामकृष्णपुरम्, सेक्टर–1,
नई दिल्ली– 110 066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054
E-mail : vgs.cstt@gmail.com

अध्यक्ष की कलम से...

आयोग की त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका का अंक 91 पाठकों के सामने प्रस्तुत करते समय हर्ष हो रहा है। **'विज्ञान गरिमा सिंधु'** के माध्यम से शब्दावली आयोग ने अपनी निर्मित शब्दावली का प्रचार–प्रसार अनवरत रूप से किया है साथ ही हिंदी माध्यम से विज्ञान को अपने पाठकों तक संप्रेषित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

प्रस्तुत अंक में रसायन, स्वास्थ्य विज्ञान, भौतिकी एवं कृषिविज्ञान आदि विषयों से संबंधित ज्ञानवर्धक तथा शोधपरक लेख सम्मिलित किए गए हैं। आयोग भारतीय भाषाओं के माध्यम से ज्ञान–विज्ञान के श्रेष्ठतम साहित्य का छात्र वर्ग, अनुसंधानकर्ताओं और सामान्य प्रबुद्ध वर्ग के लिए लगातार प्रकाशन कर रहा है, जैसे– विभिन्न वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों में शब्दावली, परिभाषा–कोशों का निर्माण, विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तकों, संदर्भ–ग्रंथों और संपूरक साहित्य का निर्माण, शब्दावली कार्यशालाओं का आयोजन, इत्यादि।

इस अंक में आयुर्विज्ञान के अंतर्गत एड्स तथा स्पाइरोमीटर, कृषि विज्ञान के अंतर्गत नवनीत कुमार गप्ता का लेख 'स्थायी कृषि क्रांति और खाद सुरक्षा', डॉ. मणि का 'मिट्टी में घटता जैविक कार्बन', डॉ. इंदुभूषण पांडेय व डॉ. शुक्ला का 'जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव', जैसे महत्वपूर्ण लेखों का समावेश है। दूसरी ओर विज्ञान क्या है? घातक कवकविष : ऐफ्लाटॉक्सिन, वेदों में निहित गणित विज्ञान, आदि रोचक विषयों पर विद्वानों ने प्रकाश डाला है। डॉ. दीपक कोहली का विज्ञान समाचार भी नई–नई जानकारी से हमें अवगत करा रहा है। इसके अतिरिक्त विविध लेखों से भी हमें विज्ञान की अद्यतन जानकारी मिलेगी ऐसी आशा है।

• **विज्ञान गरिमा सिंधु** पत्रिका के संपादन के लिए विद्वान सदस्यों का योगदान सराहनीय रहा है। इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ। जिन विद्वानों ने इस पत्रिका के लिए अपने बहुमूल्य अनुभवों को लिपिबद्ध करके लेख रूप में योगदान दिया है, वे बधाई के पात्र हैं।

पत्रिका को समय पर प्रकाशित एवं मुद्रित करने की संपादक की पहल पत्रिका को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। अंत में **'विज्ञान गरिमा सिंधु'** के संपादक डॉ. अशोक सेलवटकर आयोग में तकनीकी विषयों की शब्दावलियाँ एवं परिभाषा कोश तथा पाठमालाओं के निर्माण में निरंतर व्यस्त होने के साथ–साथ पत्रिका का संपादन भी निष्ठापूर्वक कर रहे हैं जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

(प्रो. केशरी लाल वर्मा)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

अक्तूबर, 2014
नई दिल्ली

संपादकीय

त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका **विज्ञान गरिमा सिंधु** का अंक 91 (अक्तूबर–दिसंबर, 2014) पाठकों के सामने रखते हुए हर्ष हो रहा है। प्रस्तुत अंक में 'एड्स : बचाव हेतु कुछ नवीन अनुसंधान' नामक लेख में डॉ. हेमलता पंत ने एड्स पर विस्तृत सविस्तार प्रकाश डाला है कि किस प्रकार एड्स से बचाव किया जाए। विज्ञान समाचार के अंतर्गत डॉ. दीपक कोहली ने नई वैज्ञानिक जानकारी से अवगत कराया है। डॉ. आर एस सेंगर ने सेहत के लिए लाभकारी जामुन की उपयोगिता के बारे में लिखा है। स्पाइरोमीटर के रोचक पहलू को डॉ. अग्रवाल ने उजागर किया हैं। इसी तरह डॉ. ओझा ने वेदों में गणित की प्रासंगकिता पर अपनी लेखनी से हमें अवगत कराया है।

महान भारतीय खगोलविद व गणितज्ञ भास्कराचार्य पर लेख लिखकर हमें प्राचीन भारतीय संस्कृति व भारतीय विज्ञान का स्मरण कराने की कोशिश मधु ज्योत्सना ने की है। ''वनस्पतियों की उत्पत्ति'' को बहुकोशिकीय जीवों की उत्पत्ति की प्रथम शृंखला भी कहा जा सकता है। इसके बारे में डॉ. उपाध्याय ने अपने लेख में रोचक तथ्य प्रस्तुत किए हैं। कृषि भारत समेत पूरे विश्व का एक महत्वपूर्ण विषय है जिसके बिना मानव जीवन लगभग असंभव है। इस विषय के विविध आयामों पर कृषि वैज्ञानिकों तथा अन्य लेखकों ने विस्तृत जानकारी दी है।

अंक को रोचक तथा ज्ञानवर्धक बनाने का हर संभव प्रयास किया गया है। आशा करता हूँ कि हमेशा की तरह आप सभी भावी अंकों को और अच्छा बनाने के लिए सुझाव सहित अपने लेख भेजते रहेंगे।

सेलवटकर

(डॉ. अशोक सेलवटकर)

संपादक

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

अक्तूबर, 2014

नई दिल्ली

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक 91, अक्तूबर–दिसंबर, 2014

प्रधान संपादक
प्रो. केशरी लाल वर्मा
अध्यक्ष

संपादक
डॉ. अशोक सेलवटकर

सहयोग
श्री देवेंद्र दत्त नौटियाल
श्री एस सी सक्सेना

प्रकाशन–मुद्रण व्यवस्था
डॉ. पी.एन. शुक्ल, स.नि.
श्री कर्मचंद शर्मा

बिक्री एवं वितरण
डॉ. बी. के. सिंह
सहायक निदेश

संपर्क सूत्र
संपादक
"विज्ञान गरिमा सिंधु"
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7
आर.के. पुरम,
नई दिल्ली–110066

अनुक्रम

			पृ.सं.
1.	एड्स : बचाव हेतु कुछ नवीन अनुसंधान	*डॉ. हेमलता पंत*	1
2.	वनस्पतियों की उत्पत्ति	*डॉ. विनय कुमार उपाध्याय*	6
3.	स्थायी हरित क्रांति और खाद्य सुरक्षा	*नवनीत कुमार गुप्ता*	10
4.	विज्ञान क्या है?	*डॉ. ललित कुमार मिश्रा एवं रूपम शुक्ला*	13
5.	मिट्टी में घटता जैविक कार्बन : समुचित उपाय जरूरी	*डॉ. दिनेश मणि*	14
6.	सर्पगंधा : एक संकटापन्न उपयोगी बनौषधि	*डॉ. वीरेंद्र कुमार*	19
7.	स्पाइरोमीटर	*डॉ. जे. एल. अग्रवाल*	24
8.	जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव तथा उसके बचाव के उपाय	*डॉ. इंदुभूषण पांडेय एवं डॉ. दीनानाथ शुक्ला*	27
9.	जामुन : सेहत के लिए लाभकारी फल	*डॉ. आर एस सेंगर एवं अमित कुमार*	31
10.	घातक कवक विष : ऐफ्लाटॉक्सिन	*डॉ. दीपक कोहली*	34
11.	वेदों में निहित गणित की प्रासंगिकता	*डॉ. दुर्गादत्त ओझा*	36
12.	विश्व के भूगोलविदों की संगोष्ठी	*जगनारायण*	40
13.	भास्कराचार्य द्वितीय	*मधु ज्योत्सना*	42
14.	वर्ष 2010 का अद्भुत जोड़	*श्रीमती स्वर्ण लाल शर्मा*	45
15.	विज्ञान समाचार	*डॉ. दीपक कोहली*	47
	लेखक–परिचय		51
	आयोग के प्रकाशन		52

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रकाशित की जाती है।

1

एड्स : बचाव हेतु कुछ नवीन अनुसंधान

हेमलता पंत

एड्स (AIDS) 'एक्वायर्ड इम्यूनो डिफिशिएन्सी सिन्ड्रोम' का संक्षिप्त रूप है। यह 'एच.आई.वी. विषाणु' (ह्यूमन इम्यूनो डिफिशिएन्सी वाइरस – मानव प्रतिरक्षा हीनता विषाणु) द्वारा होता है। एड्स वस्तुतः किसी एक रोग का नाम नहीं है बल्कि एक ऐसी स्थिति है, जिसमें मनुष्य के शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता नष्ट हो जाती है, जिससे वह कई प्रकार के संक्रमणों से घिर जाता है। इन्हीं में से कोई एक संक्रमण उसके लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

एड्स (उपार्जित प्रतिरक्षा न्यूनता संलक्षण) की सबसे पहले जानकारी सन् 1981 अमेरिका के कैलीफोर्निया प्रांत से प्राप्त हुई। इस बीमारी का आरंभ समलैंगिक पुरुषों से हुआ। अमेरिका के हॉवर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक एच एसेक्स के अनुसार इस रोग का विषाणु अफ्रीका जैसे देश में पाए जाने वाले हरे रंग के बंदरों द्वारा मुनष्यों में आया। इस समय दुनिया भर में लगभग 4 करोड़ लोग एड्स से पीड़ित हैं। जिसमें से लगभग 3.20 लाख संख्या बच्चों की है। डब्ल्यू.एच.ओ. के अनुसार इस बीमारी से प्रतिदिन लगभग 8000 लोग ग्रसित हो जाते हैं। इस समय जिन लोगों में एच.आई.वी. फैल रहा है उसमें आधे से अधिक लगभग 15–25 वर्ष के व्यक्ति हैं।

संक्षिप्त परिचय : एड्स का विषाणु रेट्रोवाइरस है और आकार में गोल तथा बहुत छोटा होता है। यह सूई की नोंक से भी कई हजार गुना छोटा होता है। इसका व्यास 10–12 नैनोमीटर होता है। इस विषाणु के चारों ओर ग्लाइकोप्रोटीन की झिल्ली होती है। इस झिल्ली के चारों ओर घुंडियाँ ग्लाइकोप्रोटीन 120 की बनी होती है। इसमें रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज नामक प्रकिण्व (एंजाइम) जुड़ा होता है। इसके दो प्रभेद (स्ट्रेन) होते हैं–

(क). एच.आई.वी. (#IV) – 1 और

(ख). एच.आई.वी. – 2

एच.आई.वी.–2 प्रभेद की तुलना में एचआईवी–1 कम फैलता है।

हम सभी के शरीर में एक प्रतिरक्षा तंत्र होता है। यह हमारे शरीर के भीतर संक्रमण और बीमारियों से मुकाबला करता है। इस प्रतिरक्षा तंत्र का सबसे महत्वपूर्ण भाग सीडी–4 कोशिका (CD-4 Cell) होता है। एच. आई.वी. विषाणु शरीर में प्रवेश कर इन्हीं सीडी–4 कोशिकाओं पर आक्रमण करते हैं तथा इन्हीं कोशिकाओं में प्रवेश करने के बाद वहीं विभाजित होते हैं जिससे इस विषाणु की संख्या इतनी अधिक हो जाती हैं कि वे पूरी आनुवंशिक व्यवस्था को नष्ट कर देते हैं। परिणामस्वरूप सीडी–4 कोशिकाओं की संख्या में बहुत कमी हो जाती है और वे अंततः नष्ट हो जाती हैं। सामान्य मनुष्य में सीडी–4 कोशिकाओं की संख्या 500–1800 मिमी.^{3} रक्त तक होती हैं किंतु एच.आई.वी. संक्रमित मनुष्य में इनकी संख्या 500 मिमी.^{3} से भी कम हो जाती हैं। अतः मनुष्यों में अन्य जीवाणुओं, विषाणुओं आदि का शरीर में प्रवेश करना सरल हो जाता है। जिससे वह कई संक्रमणों से ग्रसित हो जाता है।

सन् 1983 में पेरिस के वैज्ञानिक 'लूक मांटेगनियर' और उसके साथियों ने सर्वप्रथम एड्स से पीड़ित व्यक्ति

के शरीर के द्रव्य में एक विषाणु (लिम्फेडिनोपैथी एसोसिएटेड वाइरस – लसीकापर्व विकृति सहसंबंधित विषाणु) की पहचान की और बताया कि यह रोग विषाणु द्वारा होता है। इन्होंने इस विषाणु का नाम 'एलएवी' रखा। सन् 1984 में अमरिका के वैज्ञानिक 'आर गैलो' ने एड्स के विषाणु का नाम एच.टी.एल.वी. बताया। सन् 1985 में दोनों वैज्ञानिकों द्वारा विषाणुओं की संरचना की जानकारी के बात यह पता चला कि दोनों वैज्ञानिक एक ही विषाणु को अलग–अलग नाम से संबोधित कर रहे थे अतः दोनों प्रस्तावित नामों को मिलाकर 'एच.आई.वी.' रखा गया। सन् 1986 में 'लूक मांटेगनियर' व पुर्तगाल के वैज्ञानिकों ने एच.आई.वी.–2 प्रभेद की भी खोज कर ली। यह विषाणु पश्चिमी अफ्रीकी देशों के रोगियों में पाया गया था। फ्रांसीसी वैज्ञानिकों 'लूक मांटेगनियर' व 'सिरौसी' को सर्वप्रथम स्वतंत्र रूप से एच.आई.वी. विषाणु की पहचान करने हेतु वर्ष 2008 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

प्रसार : एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति के शारीरिक द्रव्य (जैसे, परिधि में पाए जाने वाले रक्त, वीर्य, योनि द्रव्य, अस्थि, मज्जा, रोगी माँ के दूध में, रोगी के लार में, रीढ़ की हड्डी में प्रवाहित द्रव्य) इस विषाणु का प्रसार करते हैं। यह विषाणु संक्रमित व्यक्ति के शारीरिक द्रव्य से स्वस्थ मनुष्य के रक्त प्रवाह में सीधे प्रवेश कर जाने पर ही फैलता है। एड्स रोग मुख्य रूप से संक्रमित स्त्री या पुरुष से यौन संपर्क द्वारा प्रसरित होता है, इसके अतिरिक्त इसका प्रसार संक्रमित व्यक्ति द्वारा रक्त देने से, संक्रमित माता द्वारा गर्भस्थ शिशुओं को, एच.आई.वी. संक्रमित द्वारा इस्तेमाल संक्रमित सूई या सिरिंज को बिना शुद्ध किए प्रयोग (मुख्य रूप से सूई द्वारा नशीले पदार्थ लेने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रयोग की गई सिरिंज से) तथा कटी–फटी त्वचा के मार्ग से होता है। एड्स के विषाणु प्रमस्तिष्क मेरुद्रव्य, आँसू, पसीना, मल व मूत्र में उपस्थित होते हैं लेकिन इनसे रोग का संचार नहीं होता। इस विषाणु का संचरण, हवा, पानी, खाद्य–पदार्थों, छींकने खांसने, आलिंगन, हाथ–मिलाने, एक साथ खेलकूद, सार्वजनिक शौचालयों के प्रयोग, एड्स रोगी के बिस्तर, कपड़े या बर्तनों के प्रयोग व मच्छर/कीटों के कटने आदि से भी नहीं होता।

एड्स के लक्षण : एच.आई.वी. पॉजीटिव होने का अर्थ है कि विषाणु शरीर में पहुंच चुका है, लेकिन जब विभिन्न बीमारियाँ लगने लगे तथा सीडी–4 कोशिकाओं की संख्या घटकर 200 से कम हो जाए तो इस अवस्था को एड्स कहते हैं।

एड्स के सामान्य लक्षणों में एक महीने तक लगातार खाँसी आती है, सामान्य त्वचा में पीलापन, मुँह व गले में कवक संक्रमण, सामान्य लसीका ग्रंथियों में वृद्धि व हर्पीज (परिसर्प) वाइरस का सहज संक्रमण होता है। एड्स के मुख्य संक्रमणों में शरीर का भार कम–से–कम 10 प्रतिशत घट जाता है, एक महीने या उससे अधिक समय तक लागातार या रुक–रुककर बुखार तथा लगातार दस्त होते हैं। एच.आई.वी. संक्रमण के बाद मनुष्यों में इसके लक्षण तुरंत प्रकट नहीं होते हैं। ऐसा पाया गया है कि बच्चों में एड्स के लक्षण 6 महीने से लेकर 1 वर्ष के भीतर दिखाई देने लगते हैं जबकि बड़ों में संक्रमण के बाद लगभग 5–8 वर्षों तक वह व्यक्ति पूर्णतः स्वस्थ रहता है। एच.आई.वी. संक्रमण की जानकारी के लिए एक विशेष रक्त जाँच होती है, जिसे एलाइजा टेस्ट कहते हैं। यदि इस टेस्ट की पोर्ट पॉजिटिव होती है तो निदान की पुष्टि करने के लिए डॉक्टर पुनः एलाइजा टेस्ट या वेस्टर्न ब्लॉट नाम का एक दूसरा टेस्ट भी करवा सकता है, यदि दोनों टेस्ट पॉजिटिव है तो व्यक्ति एच.आई.वी. संक्रमित हो गया है।

उपचार : अभी तक एड्स के सफल उपचार हेतु वैज्ञानिक कोई विशेष औषधि नहीं खोज पाए हैं, लेकिन कुछ औषधियाँ परीक्षण स्तर पर पहुंच चुकी हैं। इन औषधियों में 'जिडोवडाइन' या ई.जेड.टी. सबसे कारगर सिद्ध हुई है। इस औषधि का प्रयोग करने से रोगी के प्रतिरक्षा तंत्र में सुधार होता है। अतः रोगी का जीवन

कुछ और दिन बढ़ जाता है। इस दवा का इस्तेमाल लगभग 40 देशों में इस समय हो रहा है। लेकिन यह बहुत मंहगी दवा है और इस दवा के उपयोग से कुछ हानिकारक अनुषंगी प्रभाव भी देखे गए हैं। इसके अलावा एक दूसरी दवा भी बनाई गई है जिसका नाम डॉईऑक्सी साइटीडायन या डी.डी.सी. है। जिसे ई. जेड.टी के साथ मिलाकर प्रयोग करते हैं।

एड्स के उपचार हेतु 'हाई एक्टिव रेट्रोवाइरस रेजिसटेंस थिरेपी' सबसे अधिक प्रचलन में है। यह तीन या इससे अधिक औषधियों का संयोजन होता है। यह रोगी के रुधिर में उपस्थित विषाणुओं की संख्या को बहुत कम कर देती है। जब सी.डी.–4 की संख्या 350 कोशिका प्रति मिमी.^{3} से कम हो तब इस उपचार को शुरू करना चाहिए।

वैज्ञानिकों ने शोध उपरांत यह निष्कर्ष निकाला कि एड्स विषाणु में निफ जीन होते हैं जो विषाणु के गुणन पर नियंत्रण रखते हैं। इसी निफ जींस के सूत्रधार की सहायता से ही एड्स के विषाणु अपनी संख्या बहुत अधिक पहुँचाने में समर्थ होते हैं। वैज्ञानिकों ने निफ जीन को अलग करने में सफलता प्राप्त कर ली है जिससे यह उम्मीद बँधी है कि अब एड्स के जीवित विषाणु के द्वारा ही टीके या उचित दवा का विकास किया जा सकता है।

कुछ नवीन अनुसंधान : वैज्ञानिकों का कहना है कि उन्होंने इस बात की खोज कर ली है कि क्यों कुछ बंदर एड्स के विषाणुओं से बच जाते हैं। इस निष्कर्ष से एच.आई.वी. ग्रस्त लोगों के इलाज में बहुत मदद मिलने की उम्मीद है। शोधकर्ताओं के अनुसार जब एड्स के विषाणु बंदर के शरीर में प्रवेश करते हैं तो उन्हें एक प्रकार की प्रोटीन का सामना करना पड़ता है जो उनकी पुनरुत्पादकता को रोक देता है, जिससे वे उसके शरीर में फैल नहीं पाते। एड्स पर शोध के विशेषज्ञ कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के पॉस लुसिव ने कहा है कि यह खोज बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उन विषाणुओं के फैलने का आधार ही खत्म कर देती है। बोस्टन के डाना–फार्बर कैंसर संस्थान के शोधकर्ताओं ने इस प्रोटीन को 'टी.आर.ई.एम.–5 अल्का' नाम दिया है। यह प्रोटीन मनुष्यों में भी पाया जाता है, लेकिन वह एच.आई.वी विषाणुओं से लड़ने में बंदरों के प्रोटीन जितना कारगर नहीं होता। लेकिन शोधकर्ताओं का कहना है कि वे एक ऐसी दवा तैयार कर लेंगे, जिनकी मदद से वह बेहतर तरीके से काम करने लगेगा। वैज्ञानिकों ने कहा है कि उक्त प्रोटीन का पता लगाने के बाद अब वे उसकी क्षमता बढ़ाने का तरीका भी खोजेंगे।

अमेरिका के शिकागो स्थित 'कुक काउंटी अस्पताल' स्थित महिला एच.आई.वी शोध संस्थान के निदेशक डॉ. एम कोहेन ने यह बताया है कि यदि गर्भावस्था के दौरान ही किसी महिला के एच.आई.वी. से संक्रमित होने के बारे में पता लग जाए तो 'एंटीरिट्रोवियल' की सहायता से बच्चे का जीवन संक्रमण से बचाया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने नवजात शिशुओं में एड्स का पता लगाने के लिए एक ऐसा 'रैपिड टेस्ट' खोजने का दावा किया है जिसकी मदद से महिलाओं के एड्स से संक्रमित होने के बाद भी उनके बच्चों को इस संक्रमण से बचाया जा सकता है। अमेरिकी चिकित्सकों द्वारा बनाए गए इस परीक्षण की मदद से केवल 1 घंटे 6 मिनट में ही इस बात का पता लगाया जा सकता है कि कोई महिला एच.आई.वी. से संक्रमित है या नहीं। एक बार इस बात का पता लग जाने के बाद चिकित्सक प्रसव के पहले महिला को इंजेक्शन देकर तथा प्रसव उपरांत बच्चे को इंजेक्शन लगाकर एड्स विषाणु के संक्रमण से बचा सकते हैं।

हॉवर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ, न्यूयार्क के डॉ. वेफीफाजी ने तंजनिया की एड्स से ग्रसित महिला के परीक्षण के बात यह जानकारी दी कि 'मल्टीविटामिन' का सेवन करने से एड्स के बढ़ने की दर को कम किया जा सकता है। यह महिला एड्स की दवा के अभाव में

मल्टीविटामिन का सेवन करती थी। अतः डॉ. वेफीफाजी के अनुसार जहाँ एड्स की दवाएँ आसानी से उपलब्ध नहीं हैं, एड्स रोगी मल्टीविटामिन का प्रयोग कर सकते हैं। यही नहीं एड्स की एडवांस स्टेज में भी मल्टीविटामिन दवाएँ लेकर मरीज को राहत दी जा सकती है, इसके अलावा मल्टीविटामिन के सेवन से एड्स की दवा की आवश्यकता को भी टाला जा सकता है। डॉ. वेफीफाजी के अनुसार मल्टीविटामिन हालांकि एड्स की दवा का विकल्प नहीं है लेकिन तंजनिया सहित कई अन्य अफ्रीकी देशों में, जहाँ आज भी एड्स की तेज असर दवाएँ अभी उपलब्ध नहीं है, इस स्थिति में वहाँ मल्टीविटामिन का सेवन काफी हद तक कारगर साबित हो रहा है।

विश्व के कई स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार अब एड्स की एक कारगर दवा 'फुजियान' की खोज हो गई है। लगभग 1000 मरीजों पर कई सप्ताह तक हुए परीक्षणों के बाद इसके प्रभावकारी परिणाम सामने आए हैं। स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने बताया कि 'फुजियान' का प्रयोग करने वाले एड्स के मरीजों में एच.आई.वी. (पॉजिटिव) का स्तर प्रभावी ढंग से घट गया, इसके साथ ही एच.आई.वी. की विषाणुओं से नष्ट होने वाली 'सी.डी.–4 प्रतिरोधी कोशिकाओं' के पुनर्निमाण की बात भी सामने आई। स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार यह दवा हर दृष्टि से सुरिक्षत है और इसका कोई अनुषंगी प्रभाव भी नहीं दिखा।

केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ ने महिलाओं के लिए रीठे से एक गर्भ निरोधक क्रीम 'कॉनसैप' का निर्माण किया है। इसे बनाने वाले दल के संयोजक डॉ. ओ पी अस्थाना के अनुसार इस क्रीम का गहन परीक्षण कुल 784 महिलाओं में लगभग पाँच वर्षों तक किया। इस क्रीम के प्रयोग से शुक्राणु नष्ट होंगे और ऐसी स्थिति में गर्भधारण नहीं होगा तथा साथ–ही–साथ इसके प्रयोग से महिलाएँ संक्रामक एच.आई.वी. विषाणु से भी पूरी तरह सुरक्षित रहेंगी।

अभी हाल में ही एड्स के संक्रमण की जाँच में चिकित्सा विज्ञान ने नई कामयाबी प्राप्त की है। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने 'ओरास्योरहोम एच.आई.वी. किट' को विकसित किया है जिससे घर पर ही संक्रमण की जाँच हो जाएगी। इस किट के माध्यम से लार के नमूने द्वारा ही एच.आई.वी. संक्रमण की जानकारी मिल जाएगी। इस किट का प्रयोग किसी भी स्थान पर किया जा सकेगा और परीक्षण का निष्कर्ष 20–40 मिनट में ही आ जाएगा। अभी इस किट की कीमत 60 डॉलर के लगभग होगी।

एड्स की बीमारी से निपटने के तौर–तरीकों पर चर्चा करने के लिए पिछले दो दशकों में अमेरिका में 23 सितंबर 2012 से 28 सितंबर 2012 तक एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में 25 हजार विशेषज्ञों ने भाग लिया। संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी यू.एन. एड्स की प्रमुख 'मिशेल सिडवी' ने वाशिंगटन में इस सम्मेलन का उद्घाटन किया। इस सम्मेलन में इस 31 साल पुरानी बीमारी से निपटने के लिए और अधिक आर्थिक मदद एवं लोगों को जागरूक करने की रणनीति पर जोर दिया गया। इस सम्मेलन में यह कहा गया कि इस बीमारी के विषाणु पाए जाने की सबसे अधिक आशंका पुरुष–समलैंगिकों, ड्रग इस्तेमालकर्ताओं और गरीब मरीजों से है। अतः ऐसे में इन लोगों पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। शोधों द्वारा यह निष्कर्ष आया है कि जो एड्स पीड़ित जीवन–रक्षक दवाओं का प्रयोग करते हैं वे कभी भी किसी को संक्रमित नहीं करते, अतः स्वास्थ्यकर्ता यह मानते हैं कि इलाज बचाव का भी एक तरीका है।

एड्स जागरूकता के लिए 27 सितंबर 2012 को इलाहाबाद में 'रेड रिबन एक्सप्रेस' आई। यह रेल स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, मंत्रालय भारत सरकार और उत्तर प्रदेश सरकार के संयुक्त तत्वावधान से चलाई जा रही है। देश के 23 राज्यों के 162 स्टेशनों से होते हुए यह रेल 10 जनवरी 2013 को वापस नई

दिल्ली पहुंची। इस रेल में एड्स संबंधी कई नई जानकारियाँ उपलब्ध थी।

बचाव : इस रोग की रोकथाम हेतु सुरक्षित यौन संबंध, सुरक्षित रक्त का उपयोग, सुरक्षित सूई व सुरक्षित गर्भावस्था को अपनाना चाहिए। इसके साथ–साथ अपने चिकित्सक से आवश्यक परामर्श, नियमित व्यायाम, संतुलित तथा पौष्टिक आहार का सेवन, शराब व नशीले पदार्थों का त्याग एवं सदैव सकारात्मक सोच बनाए रखने की आवश्यकता है।

नई कामयाबी : इंस्टीट्यूट फॉर बेसिक बायोमेडिकल साइंसेज, अमेरिका के वैज्ञानिकों को एड्स की चिकित्सा में एक और कामयाबी मिली है। इन्होंने शरीर में उपस्थित प्रतिरोधी कोशिकाओं के एच.आई.वी. पर अप्रभावी होने का कारण ढूँढ निकाला है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार एड्स से संक्रमित व्यक्ति में एच. आई.वी. के आर.एन.ए. का एक अंश प्रतिरोधी कोशिकाओं से जुड़ जाता है। यह अंश एक कोड का काम करता है, जिससे प्रतिरोधी कोशिकाओं की क्रिया बदल जाती है। अनुसंधान द्वारा यह देखा गया कि एड्स के विषाणु जब डी.एन.ए. से चिपक जाते हैं, तो प्रतिरोधी कोशिकाएँ विपरीत प्रकार से कार्य करने लगती हैं, वे डी.एन.ए. की मरम्मत करने के बजाए उसमें दरार उत्पन्न करने लगती हैं। इससे आशा है कि आने वाले समय में प्रतिरोधी कोशिकाओं की डी.एन.ए. की मरम्मत के लिए तैयार करने वाली दवाएँ बनेंगी तथा इस बीमारी को जड़ से खत्म करने और और संक्रमित मरीजों की जान बचाने में सहायता मिलेगी।

यूनिवर्सिटी ऑफ मेलबर्न, आस्ट्रेलिया के शोधकर्ता मेरिट क्रेमस्की ने अपने शोध उपरांत यह पाया कि गाय के दूध से विकसित क्रीम एच.आई.वी. संक्रमण से बचाने में सहायक साबित हो सकती है। बच्चे को जन्म देने के बाद पहला दूध (प्रथमस्तन्य या खीस) बेहद गुणकारी व तमाम रोगों से लड़ने वाला होता है। इसी को आधार मानकर शोधकर्ता ने गर्भवती गाय को एच.आई.वी. प्रोटीन का टीका लगाया। यह देखा गया कि गाय द्वारा बछड़े का जन्म देने के बाद खीस में प्रतिपिंड (एंटीबॉडीज) भरपूर मात्रा में थे जो बछड़े को इस बीमारी से बचा सकते थे। अब शोधकर्ता खीस से ऐसी क्रीम बनाने में जुटे हैं जो यदि महिलाएँ प्रयोग करें तो उन्हें एच.आई.वी के संक्रमण से बचाया जा सके।

एच.आई.वी. के संक्रमण के मामलों में भी हमारा देश 50 प्रतिशत की कमी लाने में सफल रहा है। हालांकि एच.आई.वी. (एड्स) का टीका नहीं है, लेकिन जागरूकता अभियान से संक्रमण घटे हैं। भारत में रोगियों की संख्या पांच वर्ष पूर्व 54 लाख थी, लेकिन आज वर्ष 2014 में यह लगभग 20–21 लाख तक रह गई है।

ooo

2

वनस्पतियों की उत्पत्ति

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

प्रारंभ में पृथ्वी पर सजीव प्राणियों में एक कोशिका वाले जीवाणु शामिल थे। कहीं वनस्पतियों का नामोनिशान भी नहीं था। ये जीवाणु अपना आहार मुख्यतः अवशोषण विधि से प्राप्त करते थे। ऐसे भी कुछ जीवाणु थे जो अकार्बनिक पदार्थों को रासायनिक संश्लेषण द्वारा खाद्य–पदार्थों में बदलकर आहार के रूप में ग्रहण करते थे। इनमें प्रजनन कार्य विखंडन (फिशन) द्वारा संपन्न होता था। ये एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए कशाभ का उपयोग करते थे अथवा विसर्पण द्वारा चलते–फिरते थे। इनकी आकृतियाँ गोलाकार छड़ के समान अथवा सर्पिल होती थी। पुराजैव विज्ञानियों के अनुसार, जीवाणु जल में ही रहते थे। इनमें वनस्पति अथवा जंतु के नाम पर कोई भेद नहीं था। एक ही प्रकार के जीवाणु वनस्पति अथवा जंतु दोनों का प्रतिनिधित्व करते थे। कालांतर में इन जीवाणुओं का वनस्पतिजगत् और प्राणि जगत् का विलगाव कैसे हुआ? लेखक ने इन्हीं का वर्णन प्रस्तुत लेख में किया है।

प्रारंभ में पृथ्वी पर पूर्णतः सजीव प्राणियों में एक कोशिका वाले जीवाणु शामिल थे। ऐसे एक कोशिका वाले असीम केंद्रकीय (प्रोकैरियोटिक) वाले जीवाणुओं में मौनेरा जगत के कुछ जीवाणु शामिल थे। ये जीवाणु सिर्फ असीम केंद्रकीय कोशिका की संरचना वाले थे। इनमें केंद्रकीय झिल्ली, आदि लवक (प्लैस्टिड) तथा सूत्रकणिका (माइटोकौंड्रिया) का अभाव था। ये अपना आहार मुख्य रूप से अवशोषण द्वारा ग्रहण करते थे। कुछ ऐसे जीवाणु भी थे जो अकार्बनिक पदार्थों को रासायनिक संश्लेषण द्वारा खाद्य पदार्थों के रूप में परिणत कर आहार के रूप में ग्रहण करते थे। ऐसे प्रमुख अकार्बनिक खाद्य पदार्थों में शामिल थे गंधक और लोह खनिज। इन जीवाणुओं में प्रजनन कार्य विखंडन (फिशन) द्वारा संपन्न होता था। ये स्थानांतरण के लिए कशाभ (फ्लैजेला) का उपयोग किया करते थे अथवा इनमें विसर्पण (ग्लाइडिंग) द्वारा स्थानांतरण होता था। इस प्रकार के जीवाणुओं में साइजोफाइटा संघ (फाइलम) के जीवाणु शामिल थे जो अत्यंत सूक्ष्म थे और जिनकी आकृति गोलाकार छड़ के समान अथवा सर्पिल थी।

पुराजीववैज्ञानिकों का अनुमान है कि प्रारंभिक जीवाणु जल में ही उत्पन्न हुए थे। इन जीवाणुओं में प्रारंभ में जंतु या वनस्पति के नाम पर कोई विभेद नहीं था। एक ही किस्म के जीवाणु थे जो वनस्पति तथा जंतु दोनों का प्रतिनिधित्व करते थे। ऐसे जीवाणुओं के उदाहरण प्रोटिस्ता जगत् के एककोशिका वाले प्राणी हैं। इनमें यूकैरियोटिक कोशिका संरचना पाई जाती है। इनमें लैंगिक और अलैंगिक दोनों तरह का प्रजनन संभव था और स्थिर तथा विचरणशील दोनों तरह के हो सकते

हैं। इनमें कई संघ (फाइलम) शामिल है, जैसे इयूग्लियोफाइटा, क्राइसोफाइटा, स्पोरोजोआ, जुमास्टिगिना और सार्कोडिना इत्यादि। इन सभी एक कोशिका वाले जीवाणुओं के शरीर पर सेलुलोज की एक मोटी परत चढ़ी रहती थी। सेलुलोज के इस आवरण के भीतर एक गाढ़ा चिपचिया पदार्थ भरा रहता था जिसे जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) कहा जाता है। यह प्रोटोप्लाज्म ही जीवन के लिए वांछित कच्चा माल प्रदान करता था। प्रोटोप्लाज्म के भीतर कोशिका के केंद्र में गहरे रंग का एक धब्बा मौजूद रहता था जो कोशिका का केंद्रक होता था।

अब एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त उभयनिष्ठ किस्म के जीवाणुओं से वनस्पति जगत् तथा प्राणि जगत में बिलगाव कैसे हुआ। इस संबंध में दो प्रकार के मत व्यक्त किए गए हैं। पहला है लौमार्क मत तथा दूसरा है नव डार्विनवाद। लौमार्क मत के अनुसार प्रारंभिक जीवाणुओं में धीरे–धीरे दो वर्ग विकसित हुए। एक वर्ग के जीवाणु पानी की सतह अथवा उससे कुछ गहराई पर स्थिर अवस्था में तैरते रहते थे। इस कारण ये जीवाणु लगातार सूर्य के प्रकाश के संपर्क में रहते थे। सूर्य के प्रकाश के उपयोग के कारण उन्हें जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक खाद्य–पदार्थ मिलने लगा। सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में उनमें जैवरासायनिक क्रिया का विकास हुआ जिसे हमें प्रकाश संश्लेषण कहते हैं। इस क्रिया के दौरान जीवाणु, वायुमंडल से या जल से कार्बन डाइ–ऑक्साइड को ग्रहण करते थे और इससे सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण द्वारा ग्लूकोस और ऑक्सीजन का निर्माण करते थे। इस क्रिया को निम्नलिखित समीकरण द्वारा दिखाया गया है–

$$6CO_2 + 12H_2O \rightarrow C_6H_{12}O_6 + 6H_2O + 6O_2$$

इस प्रकार निर्मित ग्लूकोस को वे जीवाणु अपने उपयोग के लिए रख लेते थे जिससे उनका शारीरिक विकास होता था, और ऑक्सीजन को वायुमंडल में छोड देते थे। इस प्रकार आदिम वनस्पतियों का विकास हुआ। इस प्रकार नीले–हरे शैवाल जिनके जीवाश्म स्ट्रोमैटोलाइट के रूप में लगभग 3.2 अरब वर्ष पूर्व निर्मित चट्टानों में पाए गए हैं।

उभयनिष्ठ जीवाणुओं (जिसके उदाहरण प्रोटिस्ता संघ के कुछ जीवाणु हैं) से कुछ ऐसे जीवाणु विकसित हुए जो जल में एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते थे। वे पानी के भीतर तथा उसकी सतह पर इधर–से–उधर विचरण करते रहते थे। इस कारण वे सूर्य के प्रकाश के सतत संपर्क में नहीं रह पाते थे। नतीजा यह हुआ कि इनके गुण, वनस्पति शाखा वाले जीवाणुओं के गुणों से धीरे–धीरे भिन्न होते चले गए। इन जीवाणुओं में पर्णहरित का विकास नहीं हो पाया जिसके कारण सूर्य की उपस्थिति में वे वनस्पतियों की भाँति अपना आहार तैयार करने में असमर्थ थे। इन कोशिकाओं को पर्णहरित (क्लोरोफिल) की कोई आवश्यकता भी नहीं थी, क्योंकि जब भी उन्हें आहार की आवश्यकता होती थी तो ये वनस्पति कोशिकाओं में चिपक जाते थे तथा अवशोषण द्वारा अपना आहार ग्रहण कर लेते थे। चूंकि ये सब कोशिकाएँ अधिक सक्रिय एवं गतिशील थी, अतः बहुत सरलतापूर्वक वनस्पति कोशिकाओं को पकड़ कर उनका उपभोग कर सकती थीं। इस प्रकार ये कोशिकाएँ अपने आहार के लिए वनस्पति कोशिकाओं पर निर्भर रहने की अभ्यस्त हो गई। इस प्रकार की कोशिकाएँ जंतु कोशिकाएँ कहलाईं।

वनस्पतियों की उत्पत्ति संबंधी दूसरे मत को नव डार्विनवाद कहा जाता है। इस मत के अनुसार प्रारंभिक प्रोकैरियोटों के कुछ सदस्यों में एक क्रांतिक उत्परिवर्तन (म्युटेशन) हुआ जिसके कारण ऐसे एककोशिकीय जीवों के भीतर एक हरे रासायनिक पदार्थ का निर्माण हुआ जिसे पर्णहरित (क्लोरोफिल) कहा जाता है। इस पदार्थ की उपस्थिति के कारण उन कोशिकाओं में प्रकाश संश्लेषण की क्षमता आ गई। आज के सायनोबैक्टीरिया इसी प्रकार के पर्णहरितयुक्त प्रकाश संश्लेषी जीव हैं। कालक्रम मे जब एककोशिका वाले पर्णहरितयुक्त मोनेरा

केंद्रक बने तथा उनमें विभाजनोपरांत बहु कोशिका व्यवस्था विकसित हुई तब वनस्पति कहे जाने वाले आदिम शैवाल जीवों का उदय हुआ।

प्रारंभ में उत्पन्न एककोशिका वाले जीवों में से कई अब लुप्त हो चुके हैं, परंतु अभी भी अनेक एककोशिका वाले प्राणी पृथ्वी पर अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। हालांकि प्रारंभिक एककोशिका वाले जीवों की तुलना में आजकल के एककोशिका वाले जीव कई प्रकार से भिन्न हैं, फिर भी कई प्रकार की समानताएँ अभी भी बनी हुई हैं। चार्ल्स डार्विन के अनुसार इन्हीं एककोशिका वाले जंतुओं एवं वनस्पतियों से आज की जटिल शारीरिक रचना वाले जंतुओं एवं वनस्पतियों का विकास हुआ है। शारीरिक संरचना में जटिलता विकसित होने का उद्देश्य परिवर्तनशील पर्यावरण के अनुसार अपने आप को ढालना था। ज्यों–ज्यों वनस्पतियों और जंतुओं की शारीरिक संरचना अधिक जटिल होती गई, उनमें कोशिकाओं की संख्या भी बढ़ती गई। यहाँ तक कि एक औसत आकार के वृक्ष में कई खराब कोशिकाएँ उपस्थित रहती हैं। ये कोशिकाएँ अत्यंत सूक्ष्म होती हैं जिन्हें नंगी आँखों से अलग–अलग नहीं देखा जा सकता।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि प्रारंभ में सभी जीव जल में ही निवास करते थे। उस काल के दौरान पृथ्वी का स्थल क्षेत्र बिल्कुल जीवन विहीन था। अनुमान लगाया गया है कि आज से लगभग 50 करोड़ वर्ष पूर्व तक ऐसी ही परिस्थिति रही। उसके बाद कुछ वनस्पतियाँ जलीय क्षेत्र से निकलकर स्थलीय क्षेत्रों में उगने लगीं। ये वनस्पतियाँ उस काल की सर्वाधिक विकसित वनस्पतियाँ थी, फिर भी वे शैवाल या काई से अधिक उच्च स्तर की नहीं थी। ये शैवाल या काई गहरे हरे या नीले रंग की पतली परतों के रूप में जमा हो रही थीं। ये आगे चलकर अन्य जीवधारियों के रूप में परिवर्तित हुई। अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के कुछ स्थानों पर समुद्री निक्षेपों द्वारा निर्मित ऐसे चूना पत्थर मिले हैं जिनमें शैवाल के जीवाश्म पाए गए हैं। चूना पत्थर की ये चट्टानें लगभग 85 करोड़ वर्ष से लेकर एक अरब वर्ष पूर्व निर्मित हुई थी। ये जीवाश्म 'स्ट्रोमैटोलाइट' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन चट्टानों में गोलाकार गुंबदुनुमा बंदगोभी के समान या अंगुली के समान आकृति वाली संरचनाएँ दिखाई पड़ती हैं। वस्तुतः ये शैवालों द्वारा निर्मित संरचनाएँ है।

सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) द्वारा अध्ययन के आधार पर पाया गया है कि शैवाल एक झिल्लीदार शारीरिक संरचना वाला जीव है। शैवालों की चार जातियां हैं– हरा शैवाल, कत्थई शैवाल, लाल शैवाल तथा नीला–हरा शैवाल। इनके रंगों में विभिन्नता का कारण इनमें चूने की मात्रा का अंतर का होना है। एक समय ऐसा भी था जब भू–सतह पर मौजूद सभी समुद्र, विभिन्न प्रकार के शैवालों से पूरी तरह आच्छादित थे। उस काल के दौरान पृथ्वी के स्थलीय भाग भी शैवाल परतों से आच्छादित थे।

सन् 1854 ई. में कनाडा के औंटारियो क्षेत्र में उपस्थित गनफ्लिंट लोह निक्षेपों के अध्ययन के दौरान प्राक् कैंब्रियन (लगभग दो अरब वर्ष पूर्व) काल में निर्मित सूक्ष्म वनस्पतियों की जानकारी पहली बार मिली। इन सूक्ष्म वनस्पति अवशेषों की आयु जब रेडियोमापी विधियों द्वारा निर्धारित की गई तो पता चला कि ये वनस्पतियाँ कई किस्म की हैं जिनमें कुछ की आकृति छोटे धागे के समान, कुछ छड़ के समान तथा कुछ गोलाकार हैं। इनमें से कुछ आज पाए जाने वाले जीवाणुओं तथा नीले हरे शैवालों की तरह हैं। कुछ की शक्ल तारों से मिलती–जुलती है तो कुछ छाते के समान हैं। गनफ्लिंट चट्टानों से आठ नए जीव समूहों को पहचाना गया है। इनके अलग–अलग नाम दिए गए हैं। ये सभी जीवधारी प्रोकैरियोटा (न्यूक्लिस) वर्ग के हैं जिनके केंद्रक संगठित नहीं है। इनमें से कोई भी प्रोकैरियोटा जीव समूह, प्राणि वर्ग का नहीं है। इन चट्टानों के विस्तृत रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि इनमें जैविक उद्भव वाले

हाइड्रोकार्बन उपस्थित हैं तथा कुछ अन्य कार्बनयुक्त पदार्थ भी फैले हुए हैं। सबसे प्राचीन यूकैरियोटिक जीवधारियों में उन वनस्पतियों के नमूने शामिल हैं जो पूर्व कैलिफोर्निया के बेक स्प्रिंग डोलोमाइट में पाए गए हैं। इनकी आयु एक अरब तीस करोड़ वर्ष है। वनस्पति का एक अन्य पूर्णरूपेण परिरक्षित नमूना, मध्य आस्ट्रेलिया के बिटर स्प्रिंग चट्टानों में पाया गया है। यह लगभग एक अरब वर्ष पुराना है। यहां जीवाश्म परतदार ब्लैक चर्ट की चट्टानों में जैविक अवशेष के रूप में पाए गए हैं। यहां नीला–हरा शैवाल काफी संख्या में पाया गया है। इसके अलावा औपनिवेशिक जीवाणु, फफूंदी के समान तंतुदार जीवधारी, गोलाकार हरे शैवाल तथा अन्य कोशिका संरचना वाले जीवाणु भी पाए गए हैं। बिटर स्प्रिंग चर्ट से 30 प्रकार की वनस्पतियों के सूक्ष्म जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। इनमे से आधे से अधिक नीले–हरे शैवाल हैं जिनमें से कुछ आज पाए जाने वाले शैवालों से मिलते–जुलते हैं। परंतु बिटर स्प्रिंग चर्ट से जंतुओं के कोई जीवाश्म नहीं मिले हैं।

स्थलीय भागों में फैलने के पूर्व वनस्पतियां काफी समय तक जलीय क्षेत्रों में ही अस्तित्व में रही तथा विकसित होती रही। धीरे–धीरे उनमें कई नए समूहों का विकास हुआ। वनस्पतियों को जलीय क्षेत्र से स्थलीय क्षेत्र में आने में काफी लंबा समय लगा। जल में वनस्पतियों के अस्तित्व के सबसे प्रथम संकेत 3.5 अरब वर्ष पूर्व मिलते हैं। ये संकेत चंद किस्म के जीवाणुओं द्वारा निर्मित सिलिकायुक्त तथा लोहयुक्त खनिजों में पाए जाते हैं। उसी समय के आस–पास स्ट्रोमैटोलाइट का निर्माण हुआ। ये स्ट्रोमैटोलाइट शैवालों द्वारा निर्मित संरचनाएं हैं। प्रारंभिक वनस्पतियां काफी नाजुक थीं तथा वे शीघ्र ही क्षयग्रस्त होकर सूक्ष्म टुकड़ों में कार्बनयुक्त अवशेषों में परिवर्तित हो जाती थी। इन अवशेषों का पहचानना भी कठिन हो जाता था। कई जीवश्म वैज्ञानिकों ने कैंब्रियन काल की समुद्री घास (सी–वीड) काल कहा है। परंतु इस कथन की पुष्टि के लिए जीवाश्म (फॉसिल) के रूप में पर्याप्त साक्ष्य आज नहीं मिलते।

वैज्ञानिकों का विचार है कि पृथ्वी के प्रारंभिक वातावरण में ऑक्सीजन की अनुपस्थिति के कारण ओज़ोन परत उपलब्ध नहीं थीं। इसके फलस्वरूप सूर्य से आने वाली घातक परा–बैंगनी किरणें स्थलीय क्षेत्रों को सीधे प्रभावित करती थीं। इस कारणवश प्रारंभ में जो भी जीव थे, चाहे वे प्राणि हों या वनस्पति, उनका उद्‌भव एवं विकास जल में ही संभव हुआ। जल में रहने पर सुविधा यह थी कि वे जल की ऊपरी सतह से कुछ गहराई पर रहकर घातक परा–बैंगनी किरणों से अपनी रक्षा कर सकती थीं। साथ ही जल के भीतर इस गहराई पर प्रारंभिक वनस्पतियों को प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक सौर ऊर्जा भी मिल जाती थी। धीरे–धीरे वायुमंडल में जैसे–जैसे ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती गई, ओज़ोन परत का निर्माण होता गया। ओज़ोन परत ने पृथ्वी पर आने वाली घातक परा–बैंगनी किरणों को काफी हद तक नियंत्रित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके फलस्वरूप शनैः–शनैः जल की ऊपरी सतह पर तथा स्थलीय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों तथा अनेक प्रकार के प्राणियों का प्रादुर्भाव हुआ। डेवोनियन काल (अर्थात् आज से लगभग 35–40 करोड़ वर्ष पूर्व) में सबसे पहली बार स्थलीय क्षेत्रों में कुछ किस्मों की वनस्पतियों के पाए जाने के स्पष्ट संकेत प्राप्त होते हैं।

○○○

3

स्थायी हरित क्रांति और खाद्‌य सुरक्षा

नवनीत कुमार गुप्ता

असल में भोजन सभी जीवों की प्राथमिक आवश्यकता है। हर जीव को जीने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो उसे भोजन से मिलती है। हर व्यक्ति को चाहे वह अमीर हो या गरीब अपना पेट तो भरना ही होता है। लेकिन यह विडंबना ही है कि आज भी करोड़ो लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिल पा रहा है। असल में मानव जनसंख्या के बहुत बड़े भाग के लिए पोषण युक्त आहार तक की पहुंच, आज भी सपना ही है। भारत के संदर्भ में बात करें तो हमारे देश के सामने 12 अरब लोगों के लिए पोषण युक्त आहार उपलब्ध कराने की चुनौती है। हमारे यहां जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग अपनी जीविका के लिए खेती, पशु पालन, वानिकी से जुड़ा है लेकिन इस वर्ग को जो सबके लिए पोषण आहार उपजाता है उसे ही पेटभर भोजन न मिल पाना विडंबना ही है। स्वतंत्रता के बाद से ही सब के लिए पर्याप्त भोजन की उपलब्धता हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य रहा है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का यह कथन है कि "सभी इंतजार कर सकते हैं, लेकिन खेती नहीं" खाद्‌य सुरक्षा की महत्ता को प्रतिपादित करता है।

कृषि का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। कृषि के संबंध में यह भी कहा जाता है कि कृषि के आरंभ से ही मानव सभ्यता की नींव पड़ी। कृषि के विकास के साथ–साथ मानवीय संस्कृति और परंपराएं भी विकसित होती गईं। अन्य क्षेत्रों का विकास भी कृषि की सफलता पर निर्भर रहा है। भारत की करीब 65 से 70 प्रतिशत आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर ही निर्भर है। इसके अलावा कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत में कृषि का अन्य दूसरे क्षेत्रों पर भी व्यापक प्रभाव पड़ता है। कृषि की बात की जाए तो यह मुख्यतः मिट्‌टी, बीज और पानी पर निर्भर करती है और अधिक उत्पादन के लिए इन्हीं कारकों की गुणवत्ता आवश्यक है।

वैसे कुछ लोग कहते हैं कि आज हमारे अनाज भंडारों में गेहूं और चावल की प्रचुरता है लेकिन यदि इन भंडारों के होते हुए भी जिस देश में लाखों लोग अपना पेट भी न भर सकें तो भला ये भंडार किस काम के। असल में भले ही हमने तेजी से विकास किया हो लेकिन पोषणयुक्त आहार के मामले में यह विकास अभी भी आम आदमी तक नहीं पहुंच पाया है। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन के अनुसार, "यदि विकास दर बढ़ने से गरीबों को कोई लाभ नहीं होता तो इस तरह का विकास निरर्थक है।" संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था खाद्‌य और कृषि संगठन के अनुसार, "भारत में 23 करोड़ लोग भूखमरी के शिकार हैं। भारत में हर दिन 5,000 बच्चे कुपोषण का शिकार होते हैं। भारत में महिलाओं की आधी आबादी अरक्तता (अनीमिया) से जूझ रही हैं।" असल में हमारे देश में एक बड़ी आबादी गरीब है, उसके पास उतना पैसा भी नहीं है कि वह पेट भरने लायक अनाज खरीद सके। योजना आयोग के अनुसार, "देश की 37.2 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे रह रही है।" यह हमारे देश का दुर्भाग्य ही है कि आज भी बच्चे और महिलाएं व्यापक रूप से कुपोषण से ग्रस्त हैं। अतः भूख की लड़ाई में हमें सबसे पहले गरीबों के जीवन में सुधार

लाना होगा और इसके लिए राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था को एक साथ कार्य करना होगा ताकि सभी को पोषणयुक्त आहार उपलब्ध कराया जा सके।

आधुनिक दौर में जहां एक तरफ पूंजीवाद तथा उसके जुड़ी मान्यताएं फली–फूली वहीं दूसरी ओर बाजारवादी व्यवस्था भूख को मुनाफें के धंधे में बदलने लगी हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां स्वास्थ्य व पोषण की कमी को हथियार बनाकर अपने फायदे की नीतियां और कार्यक्रम थोपकर दोनों हाथों से धन बटोर रही है। सबसे बड़ी चिंता की बात यह है कि कंपनियों और बाजार की सांठ–गांठ ने हमारी परंपरागत और प्राकृतिक खाद्य व्यवस्था के ताने–बाने में सेंध लगा दी है। एक समय हमारे देश में करीब 50 से 60 हजार धान की किस्में बोई जाती थी लेकिन आज महज कुछ ही प्रमुख किस्मों को उगाया जाता है जो हमारी समृद्ध जैव विविधता के लिए चिंता का विषय है। रासायनिक खेती के बढ़ते प्रयोग ने मिट्टी में पाए जाने वाले अनेक प्रकार के लाभकारी सूक्ष्मजीवों का तेजी से सफाया करने के साथ ही हमारी आहार शृंखला से कई आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों को भी दूर किया है। इस कारण आज एक बड़ी आबादी जिंक जैसे महत्वपूर्ण तत्वों की कमी का सामना कर रही है। अब बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा कृत्रिम रूप से इन पोषक तत्वों को आहार में शामिल करने का अभियान चलाया जा रहा है ताकि वो अपनी तिजोरियां भरती रहें।

यह विडंबना है कि हमारे देश में अनेक भोले–भाले किसान इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बहकावे में आकर परंपरागत खेती से दूर हो गए और उन्होंने रासायनिक दवाओं व आनुवंशिक बीजों को अपनाकर अपनी मिट्टी और पानी को अनजाने में ही जहरीला बना दिया। लेकिन अब हमारे देश के किसानों को धीरे–धीरे यह समझ में आ रहा है कि रासायनिक दवाओं एवं ऊर्वरकों के द्वारा खेती में स्थायी समृद्धि नहीं लाई जा सकती। इसलिए देश में कई स्थानों पर परंपरागत खेती का बिगुल बज उठा है और आवश्यकता के अनुसार आधुनिक तकनीकों का भी उपयोग किया जा रहा है लेकिन इस बात का पूरा ध्यान रखा जा रहा है कि हवा, पानी और मिट्टी प्रदूषित न हों।

हालांकि कृषि क्षेत्र के लिए वैश्विक उष्मण (ग्लोबल वार्मिंग) एक अन्य गंभीर चुनौती है। सितंबर, 2009 में संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट ने औसत ताप में प्रति डिग्री बढ़त से भारत में गेहूं की उपज में प्रतिवर्ष 60 लाख टन कमी की आशंका जताई है। इसी आधार पर वैश्विक उत्पादन में आने वाली कमी का अंदाजा लगाया जा सकता है। बढ़ते ताप का प्रभाव अनेक फसलों पर पड़ने के कारण खाद्य सुरक्षा का महत्व और भी बढ़ जाता है।

बढ़ते खाद्य संकट के लिए अनाज, दालों और सब्जियों में हुई बेतहाशा मूल्यवृद्धि को भी मुख्य कारण बताया जा रहा है। खाद्य मूल्यों में हुई वृद्धि के लिए अंतरराष्ट्रीय बाजारों में मांस की मांग में वृद्धि को एक बड़ा कारण मान रहे हैं। इस मांग को पूरा करने का प्रभाव, चारा उत्पादन पर भी पड़ता है। जिससे अनाज की जगह चारे का उत्पादन अधिक किया जाने लगा है जिसके परिणामस्वरूप खाद्यान्न की आपूर्ति भी प्रभावित हुई।

हालांकि भारत खाद्यन्न मामले में आत्म निर्भर है और पिछले दो–तीन सालों में चल रहे वैश्विक खाद्यन्न संकट जैसी स्थिति हमारे देश में नहीं दिखी। आज सरकार के पास भंडारण क्षमता से ज्यादा अनाज के भंडार है। अनाज की कुल भंडारण क्षमता 430 लाख टन है जबकि अगस्त, 2010 तक सरकारी एजेंसियों के पास 580 लाख टन अनाज का भंडार था लेकिन वास्तविकता में प्रति व्यक्ति खाद्यन्न उपलब्धता में गिरावट आई है। जहां सन् 1961 में प्रति व्यक्ति खाद्यन्न उपलब्धता 468.7 ग्राम थी वह 2007 में घटकर मात्र 439.3 ग्राम रह गई। यह बात भी सच है कि भंडारण क्षमता से अधिक अनाज जमा होने पर उसका

काफी हिस्सा खराब हो जाता है। इसलिए खाद्य भंडारण के लिए आधुनिक तकनीकों को अपनाने के साथ पारंपरिक तरीकों की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि अनाज के प्रत्येक दाने का समुचित उपयोग हो सके।

बदलते जलवायु के संदर्भ में परंपरागत कृषि, ज्ञान एवं देशी बीजों को बचाने एवं उनके उपयोग समुचित करने में उपयोगी होगी। हमारे देश में बीजों की अनेक स्थानीय किस्में हैं। देशी बीजों को बचाने के संदर्भ में हमारे देश में कार्यरत भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् व कृषि क्षेत्र के विकास से संबंधित अन्य संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। इन संस्थाओं में देशी बीजों को आधुनिक तकनीकों का उपयोग कर अधिक उन्नत बनाया जा सकता है। जिससे अधिक पैदावार ली जा सकती है। इसी क्रम में जैव प्रौद्योगिकी द्वारा अब कुछ ऐसी फसलें उगाना संभव हुआ है जो सूखे का सामना करने में कुछ हद तक समर्थ हो सकती हैं। इसी दृष्टि से यदि कभी राजस्थान में उगने वाले खेजड़ी वृक्ष का जीन, गेहूं के बीजों में डाला जाना संभव हुआ तो फिर पानी की कमी वाले क्षेत्रों में भी गेहूं की फसल लहराएगी। इसके अलावा किसानों को बाजार व बड़ी कंपनियों की गिद्ध दृष्टि से बचाने के लिए भी अब यह आवश्यक हो गया है कि हम अपने देशी बीज व खाद का उपयोग परंपरागत व आधुनिक तकनीकों के साथ करें। कृषि में उपयोग किए जाने वाले ऐसे रसायनों के निर्माण को बढ़ावा देना चाहिए जो जैव–विविधता को नुकसान न पहुंचाए। पर्यावरण अनुकूल 'सदाबहार कृषि', जैव– विविधता और किसान दोनों के लिए लाभकारी होगी।

सभी लोगों तक पोषित भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए क्रय शक्ति और रोजगार को बढ़ावा देना होगा। सरकार को चाहिए कि वह गरीब मजदूर को अनाज खरीदने के लिए सक्षम बनाएं ताकि कम–से–कम वह अपने पेट को भर सकें। आज भारत को स्थायी हरित क्रांति पर आधारित ऐसी खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा आर्थिक और सामाजिक रूप से संतुलित आहार एवं पेय जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के साथ ही पर्यावरण की स्वच्छता और स्वस्थ्यचर्या को आम आदमी के जीवन का अभिन्न हिस्सा बनाया जा सके। इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए खाद्यान्नों के उत्पादन व वितरण की व्यवस्था को प्रभावी बनाए जाने की भी आवश्यकता है ताकि धरती से उपजा अनाज का प्रत्येक दाना, खाद्य सुरक्षा में अपना योगदान दे सकें।

ooo

4

विज्ञान क्या है?

डॉ ललित कुमार मिश्रा एवं
रूपम शुक्ला

विज्ञान को जानने के लिए हमें अपने आस–पास की चीजों पर नजर डालने की जरूरत है, विज्ञान हर वस्तु में है। जिस प्रकार प्राचीन समय में लोग मानते थे कि ईश्वर हर जगह है। उसी प्रकार हम आज के समय में हर वस्तु को विज्ञान की नजर से देखते हैं। विज्ञान हमारे लिए एक अच्छा मित्र है और एक ताकतवर दुश्मन है। विज्ञान ने हमारे कार्यो को आसान बनाया है और वही दूसरी तरह वही विज्ञान हमारे सामने शत्रु बनकर खड़ा भी रहता है।

विज्ञान हमारा मित्र कैसे है?

विज्ञान हमारा मित्र इसलिए क्योंकि इसने हमारे कार्यो को आसान बना दिया है चाहे वह यातायात सेवाएं हो या चिकित्सा सेवाएं हो अथवा अंतरिक्ष विज्ञान हो। हर क्षेत्र में विज्ञान हमारा अच्छा मित्र साबित हुआ है।

आज पूरे दुनिया में सूचनाओं के क्षेत्र में बहुत तेजी से विकास हो रहा है। आज 3जी इंटरनेट जैसी सेवाएं हमारे लिए उपलब्ध है। इनसे सूचनाओं के आदान–प्रदान सुगम हो गया है।

पदार्थो की खोज हमारे जीवन में बहुत लाभकारी साबित हुई है। U-235 जैसे पदार्थो द्वारा आज पूरे विश्व में बिजली उत्पन्न करना संभव हो सका है। इन सब बातों पर नजर डालने पर कह सकते हैं कि विज्ञान हमारा मित्र है।

विज्ञान का दूसरा पक्ष

अगर हम विज्ञान के दूसरे पहलू को देखें तो हमें पता चलेगा कि विज्ञान हमारा जितना मित्र है उससे कहीं भयानक हमारा शत्रु है।

आज मोबाइल सेवाएं पूरे विश्व भर में छाई हुई है। जगह–जगह टावर लगाए जा रहे हैं। मगर हम भूल जाते हैं कि इन मोबाइल तरंगों से हमारा मस्तिष्क, मधुमक्खियां और पक्षी प्रभावित होते हैं। मोबाइल तरंगों के दुष्प्रभावों के फलस्वरूप कुछ वर्षो में मधुमक्खियां इस दुनिया से खत्म हो सकती हैं और मानवजाति को भयानक स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

यातायात से हजारों किमी. की दूरी के सुविधाजनक साधन उपलब्ध होने के कारण कुछ ही घंटों में तय कर लेते हैं। यातायात के विकास ने हमें आलसी बना दिया। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि आज व्यक्ति कम–से–कम दूरी तय करने के लिए वाहन का उपयोग करता है।

बढ़ते हुए यातायात के लिए अधिक ईधन की जरूरत होगी जब ईधन जलेगा तो प्रदूषण अधिक होगा और CO_2 अधिक मात्रा में निकलेगी जो ताप को वायुमंडल से बाहर जाने नहीं देती, ग्लोबल वार्मिंग बढ़ेगी तो पेड़ों में प्रकाश संश्लेषण नहीं होगा, वर्षा नहीं होगी तो जलस्तर गिर जाएगा, सूखा पड़ जाएगा, एक देश दूसरे देश पर पानी के लिए हमला करेंगे।

निष्कर्ष – हमें विज्ञान को अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहिए क्योंकि हम इंसानों ने विज्ञान को बनाया, विज्ञान ने हमें नहीं।

○○○

5

मिट्टी में घटता जैविक कार्बन : समुचित उपाय जरूरी

डॉ. दिनेश मणि

जैव–पदार्थ, किसी भी मृदा की गुणवत्ता के मूल्यांकन का केंद्र बिंदु है क्योंकि वह मृदा के अनेक गुणों जैसे– धनायन (पॉजिटिव), विनिमय क्षमता, सूक्ष्मजीवीय सक्रियता, आभासी प्रभाव, जलधारण क्षमता इत्यादि को प्रभावित करता है। हरित क्रांति के पहले हमारी खेती योग्य भूमि में 4 से 5 प्रतिशत जैविक कार्बन पाया जाता था जो आज घटकर 0.4–0.5 प्रतिशत रह गया है। यह भविष्य की खेती के लिए शुभ संकेत नहीं है। जैविक खादों के सीमित इस्तेमाल और रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रयोग से मिट्टी का स्वास्थ्य लगातार खराब होता जा रहा है। मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता में कमी आ रही है जिसके परिणामस्वरूप टिकाऊ खेती पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अतः यदि खेती को टिकाऊ बनाना है तो किसानों को अपने खेतों में जैविक खादों का अधिकाधिक प्रयोग करने की आवश्यकता है क्योंकि जैविक खादों का कोई विकल्प नहीं है।

आजकल यह अनुभव किया जा रहा है कि रासायनिक उर्वरकों के लगातार इस्तेमाल से मिट्टी की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में जैविक खादों के इस्तेमाल की सिफारिश पुनः की जा रही है क्योंकि जैविक खादों के प्रयोग से मिट्टी की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं के साथ–साथ, इसकी उपजाऊ शक्ति को दीर्घकाल तक कायम रख सकते हैं।

वास्तव में प्राकृतिक रूप से उत्पादित वे समस्त जैव–पदार्थ जो प्रायः वनस्पतियों तथा जीव–जंतुओं के अवशेषों के सड़ने–गलने के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं और खेतों में मिलाए जाने पर उसकी उपजाऊ शक्ति को बढ़ाते हैं, जैविक खादों के नाम से जाने जाते हैं। जैविक खादों के अंतर्गत गोबर की खाद, कंपोस्ट, हरी खाद, खली की खाद, वर्मीकंपोस्ट, हड्डियों से निर्मित खाद इत्यादि आते हैं। इन खादों की विशेषता यह है कि इनके प्रयोग से मिट्टी एवं फसलों को कोई नुकसान नहीं पहुंचता। इन खादों की सब अच्छी बात यह है कि इनमें फसलों की वृद्धि के लिए आवश्यक समस्त मुख्य गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों के अलावा मृदा–इंजाइम एंटीबायोटिक जैसे पदार्थ भी पाए जाते हैं जो मिट्टी की उर्वरता एवं उत्पादकता को टिकाऊ रखने में सहायक होते हैं। यह बात सही है कि जैविक खादें आज की अधिक पैदावार देने वाली किस्मों की पोषक तत्वों की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकतीं। उनसे अधिक पैदावार के लिए रासायानिक उर्वरक तो डालने ही पड़ेंगे परंतु दोनों प्रकार की चीजों का उपयोग करके हम भूमि की उपजाऊ शक्ति को लंबे समय तक कायम रख सकते हैं।

जैविक खादों के प्रयोग से मिट्टी के भौतिक गुणों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यदि मिट्टी में जैविक पदार्थ प्रचुर मात्रा में हैं तथा उनके विघटन की दर अच्छी है तो मिट्टी का रंग हल्का काला–भूरा दिखाई देगा। मिट्टी में पाए जाने वाले जैविक पदार्थों की वजह से मिट्टी के कण आपस में बंधे रहते हैं तथा उसमें वायु एवं जल के संचार व धारण की क्षमता बढ़ जाती है। साथ ही जैविक खादों के कारण पोषक तत्वों के खेत के क्षरण नहीं होने पाता है और ये पौधों को अधिक

मात्रा में उपलब्ध होते हैं। सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता के लिए मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन चाहिए जो जैविक खादों द्वारा मिट्टी की भौतिक दशा अच्छी होने के फलस्वरूप उपलब्ध हो जाती है। सूक्ष्मजीवों की संख्या में भी वृद्धि हो जाती है जिससे पौधों की जड़ों का विकास भी अच्छा होता है।

जैविक खादों के इस्तेमाल से न सिर्फ मिट्टी के भौतिक गुणों में सुधार आता है बल्कि उसके रासायनिक गुणों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। जैविक खादों के प्रयोग से मिट्टी में कार्बनिक कोलॉइड की मात्रा में वृद्धि हो जाती है जो पोषक तत्वों को बांधकर रखता है और उन्हें बहाकर नष्ट होने से बचाने के साथ–साथ पौधों को आसानी से उपलब्ध कराता है। जैविक खादों से दूसरा लाभ मिट्टी के pH में सुधार होता है जो मिट्टी ऊसर या क्षारीय है वहां पर हरी खाद या अन्य जैविक खादों के प्रयोग से उसके pH में कमी लाई जा सकती है क्योंकि जैविक पदार्थों के विघटन के दौरान विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्लों का निर्माण होता रहता है जो क्षारीय एवं ऊसर मिट्टी को pH को कम करके उनको सुधारते रहते हैं।

जैविक खादें मिट्टी की भौतिक एवं रासायनिक दशाओं में सुधार के अलावा मिट्टी में पाए जाने वाले सभी तरह के सूक्ष्मजीवों एवं केंचुओं के लिए भोजन का भी कार्य करती हैं जिससे उनकी संख्या एवं क्रियाशीलता में वृद्धि के कारण मिट्टी में जैव पदार्थों के विघटन की दर बढ़ जाती है। मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं क्रियाशीलता में वृद्धि से जैविक नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की उपलब्धता में भी वृद्धि हो जाती है जिससे फसलों की उत्पादकता एवं मिट्टी के स्वास्थ्य में टिकाऊपन बढ़ जाता है। किसी भी अनुपजाऊ मिट्टी में जैविक खादों के प्रयोग से उसको उपजाऊ बनाया जा सकता है। कुछ समस्याग्रस्त मृदाओं जैसे ऊसर, क्षारीय, पथरीली एवं रेतीली भूमि में लगातार जैविक खादों के इस्तेमाल से उनकी उर्वरता एवं उत्पादकता में भारी वृद्धि की जा सकती है।

जैविक खाद का विशिष्ट गुण अधिकांशतः उसकी कार्बन–सामग्री या ह्यूमस पर निर्भर करता है। इस खाद के प्रयोग से मिट्टी की रचना में सुधार होने से उसके अन्य गुणधर्मों में भी सुधार हो जाता है। यह मिट्टी के तापमान को नियमित करती है जिससे मिट्टी अत्यधिक गर्म और अत्यधिक ठंडी नहीं हो पाती इससे मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ने के साथ–साथ मिट्टी की आयन अधिशोषण और आयन विनिमय क्षमताओं में भी सुधार होता है। मिट्टी की प्रतिरोधक शक्ति बढ़ जाती है। जैविक खादों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके अवशिष्ट प्रभाव, खेतों में कई वर्षों तक पाए जाते हैं। जैविक खादें अपने गुणधर्मों के कारण खेत में ऐसी अनुकूल परिस्थितियां पैदा कर देती हैं जिनसे रासायनिक उर्वरकों को सफलतापूर्वक काम में लाया जा सकता है। भूमि में फाइटोहार्मोन या पेड़–पौधों को वृद्धि रखने वाले पदार्थों इन्डोल ऐसीटिक अम्ल तथा क्रिएटीनाइन की उपस्थिति या उत्पादन का श्रेय भी जैविक खादों को दिया जाता है।

मृदा में सभी जैव तत्व– जीवित या मृत, ताजे या अपघटित, सरल या सम्मिश्र यौगिक, मृदा जैव पदार्थ के भाग होते हैं इसमें पौधे की जड़ें, प्राणी और पौधों के अपघटन की सभी अवस्थाओं में पाए जाने वाले अवशेष, ह्यूमस और सूक्ष्मजीव और जैव यौगिक सम्मिलित किए जाते हैं। ह्यूमसीकरण से हमारा तात्पर्य जैव पदार्थों के आंशिक अपघटन की प्रक्रिया और ह्यूमस के विशिष्ट कुछ यौगिकों के संश्लेषण से है। ह्यूमसीकरण के दौरान आसानी से अपघटित हो जाने वाले कुछ घटक ऑक्सीकृत होकर जल, कार्बनडाइऑक्साइड और अन्य गैसों के रूप में समाप्त हो जाते हैं। कुछ खनिज निक्षालित (leach) हो जाते हैं। ह्यूमसीकरण के एक वर्ष पश्चात् जैव पदार्थ के मूल शुष्क भार का केवल एक अंश ही शेष बचता है। इसका संघटन वस्तुतः बदल जाता है। सामान्यतः मूल पदार्थ की अपेक्षा खनिजों एवं

नाइट्रोजन का प्रतिशत बहुत अधिक और कार्बन की मात्रा कुछ अधिक हो जाती है, लेकिन ऑक्सीजन और हाइड्रोजन दोनों की मात्राएं घट जाती हैं।

मोटे तौर पर ह्यूमसीकरण को स्थलीय, अर्धस्थलीय और जलीय समूहों में विभाजित किया जा सकता है। उनमें सुलभ पादप–सामग्री की मात्रा और प्रकार तथा अपघटन की दर और प्रकार आदि की दृष्टि से भिन्नताएं पाई जाती है। ये सभी मृदा में वायु और जल की आपेक्षिक मात्राओं से प्रभावित होते हैं। अधिकांश कृषि मृदाओं में पाए जाने वाले ह्यूमस, स्थलीय मूल का होता है। ह्यूमसीकरण की दर को तापमान, नमी और ऑक्सीजन आपूर्ति आदि कारक प्रभावित करते हैं। अतः जलवायु और स्थलाकृति का ह्यूमस के निर्माण तथा प्रकार पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। गर्म और शुष्क जलवायु में पादप वृद्धि बहुत कम और अपघटन की दर तीव्र होने के कारण मृदा में व्यावहारिक रूप ह्यूमस नहीं पाया जाता है। यद्यपि किसी क्षेत्र में उगने वाले पौधे, वहां की जलवायु एवं मृदा के परिणाम होते हैं, तथापि इन पौधों का उत्पन्न होने वाले ह्यूमस पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में उल्लेखनीय है कि पौधों की जड़ों का विस्तार, पौधों में लिग्निन की मात्रा आदि का ह्यूमस निर्माण पर प्रभाव पड़ता है।

ह्यूमस के सबसे महत्वपूर्ण घटक एमीनो अम्ल, लिग्निन की तरह के पदार्थ के जटिल यौगिक होते हैं। वैक्समैन ने इसे 'लिग्नो–प्रोटीन सम्मिश्र' नाम दिया। लेकिन लिग्नो–प्रोटीन की केवल अल्प मात्राओं को ही ह्यूमस में पहचाना जा सकता है। फिर भी सामान्यतः यह माना जाता है कि ह्यूमस में पाया जाने वाला एमीनो अम्ल–लिग्निन की तरह का सम्मिश्र, पादप पदार्थों के प्रोटीन और लिग्निन से उत्पन्न होता है। ह्यूमस में पाए जाने वाले अन्य यौगिकों में कार्बनहाइड्रेट, सेलुलोस, हेमीसेलुलोस तथा वसा, मोम और रेजिन प्रमुख हैं। ह्यूमस का निकटस्थ रासायनिक संघटन इस प्रकार है–

सारणी–1 : ह्यूमस का रासायनिक संघटन

तत्व	भार प्रतिशत
लिग्निन–सम–यौगिक	45%
एमीनो अम्ल	35%
कार्बोहाइड्रेट	11%
सेलुलोस	4%
हेमीसेलुलोस	7%
वसा, मांस और रेजिन	3%
अन्य पदार्थ	6%

सारणी–2 : खनिज मृदाओं में पाए जाने वाले ह्यूमस का एक विशिष्ट तत्वीय संघटन

तत्व	भार प्रतिशत
कार्बन	52–60%
ऑक्सीजन	32–38%
हाइड्रोजन	3–4%
नाइट्रोजन	4–5%
फॉस्फोरस	0.4–0.6%
गंधक	0.4–0.6%

सामान्य मृदा में कार्बन और नाइट्रोजन अनुपात लगभग 10:1 होता है। अनेक स्थानों में पृष्ठ मृदा के अंतर्गत ह्यूमस के लिए यह विशिष्ट अनुपात है। पृष्ठ मृदा (surface soil) की अपेक्षा अवमृदा में कार्बन और नाइट्रोजन का अनुपात अधिक होता है। अपरिष्कृत ह्यूमस में विशेषकर ठंडी जलवायु के अंतर्गत कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात बहुत व्यापक होता है। ह्यूमस की धनायन विनिमय क्षमता उच्च (200 से 400 मिली तुल्यांक प्रति 100 ग्राम) होती है। धनायनों से अभिक्रिया करने की इसकी क्षमता के कारण, ह्यूमस को दुर्बलता से वियोजित एक अम्ल की भांति कार्य करने वाला माना जा सकता है। ह्यूमस ऋणायनों को भी अवशोषित करता है लेकिन यह अकार्बनिक मृदा कोलाइडों की अपेक्षा अधिक आसानी से फॉस्फेटों को निर्मुक्त करता

है। इसलिए मृदा अभिक्रिया का स्तर pH अकार्बनिक मृदाओं में पादप वृद्धि के लिए इतना महत्वपूर्ण नहीं होता जितना खनिज मृदाओं में होता है। कैल्सियम ह्यूमेस अविलेय (insolube) होता है और चिकनी मिट्टी के साथ जलस्थाई संमिश्रणों का निर्माण करता है। हाइड्रोजन ह्यूमेट भी बहुत थोड़ा विलेय होता है लेकिन यह आसानी से विखर जाता है और इस अवस्था में मृदा की दरारों में चला जाता है। सोडियम ह्यूमेट और अमोनियम ह्यूमेट काफी हद तक जल विलेय होते हैं। काली क्षारीय मृदाओं का रंग सोडियम ह्यूमेट की विलेयता के कारण होता है। ह्यूमस का घनत्व 1.3 से 1.5 के बीच होता है। ह्यूमस के भीगने से उत्पन्न ऊष्मा 20 से 40 कैलोरी प्रतिग्राम होती है। भींगने पर ह्यूमस फूलता है और अपने भार के 2 से 6 गुना तक जल अवशोषित करता है लेकिन जब ह्यूमस अच्छी तरह सूख जाता है तो रंध्र के बारीकपन के कारण तथा जल प्रतिकर्षी तेलों, मोम और रेजिन की उपस्थिति के कारण इसका पुनः भीगना कठिन होता है अर्थात् मृत्तिका के पुनः जलयोजन के विपरीत ह्यूमस का पुनः जलयोजन कठिन होता है और यह मंद गति से होने वाली एक व्युत्क्रमी (inverse) अभिक्रिया है।

विभिन्न प्रकार की वनस्पति और पारिस्थितिक दशाओं के आधार पर कई प्रकार के ह्यूमस बन जाते हैं। अपरिष्कृत ह्यूमस जैव अवशेषों की उस अवस्था को कहते हैं जिसमें इनका अपघटन न्यून खनिज मात्रा, न्यून तापमान, अपर्याप्त वातन, फिनोलिक या अन्य यौगिकों की उपस्थिति से बाधित हो जाता है। अपरिष्कृत ह्यूमस में पादप रेशे तब भी पहचाने जाने की स्थिति में होते हैं। इस प्रकार इसका रंग काले की अपेक्षा भूरा अधिक होता है। वास्तविक ह्यूमस के विकास की प्रथम अवस्था पोषक ह्यमूस हैं इसकी संरचना लगभग अवशेषों और वास्तविक ह्यूमस के बीच की होती है। अर्थात् पोषक ह्यूमस में शर्करा, स्टार्च और विलेय नाइट्रोजनी पदार्थ जैसे आसानी से जैव अपघटनीय यौगिक होते हैं। इसलिए पोषक ह्यूमस मृदा सूक्ष्मजीवों के लिए एक महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत भी होता है। खनिज मृदा के कुल ह्यूमस का अधिकांश भाग वास्तविक ह्यूमस का उदासीन ह्यूमस होता है। इसे अनुरक्षण ह्यूमस भी कहा जाता है क्योंकि यह पोषक ह्यूमस की अपेक्षा मृदा में अधिक समय तक बना रहता है। इसका रंग लगभग काला होता है।

विभिन्न दशाओं में मृदा के अंदर तथा बाहर पादप तथा जैव अवशेष अपघटित होते रहते हैं। अपघटन की दर तथा निर्मित अंतिम उत्पाद तापमान, नमी वायु, रसायनों एवं सूक्ष्म जीवों पर निर्भर करते हैं। तापमान जितना अधिक होता है, अपघटन भी उतना अधिक तेजी से होता है। यही कारण है कि उष्णकटिबंधीय उच्च भूमियों में ह्यूमस कम पाया जाता है। जैविक अपघटन के लिए नमी की जरूरत होती है। लेकिन जल की अधिकता से वायु घट जाती है परिणामस्वरूप अपघटन की गति मंद पड़ जाती है। सूक्ष्मजीवों को पोषण हेतु आवश्यक पोषक तत्वों की सुलभता अपघटन की दर को निर्धारित करती है तथा इससे निर्मित ह्यूमस का प्रकार प्रभावित होता है। इस दृष्टि से नाइट्रोजन अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। अनुर्वर मृदाओं की अपेक्षा उर्वर मृदाओं में जैव पदार्थ अधिक तीव्रता रो अपघटित होता है। मृदा जैव पदार्थ के अपघटन का अनुक्रम सामान्यतः इस प्रकार है–

शर्करा, स्टार्च, जलविलेय प्रोटीन → अपरिष्कृत प्रोटीन → हेमीसेलुलोस → सेलुलोस → तेल, वसा, लिग्निन तथा मोम।

जैव पदार्थ की अपघटन – दर समय के साथ तथा ह्यूमस की तरह समान रासायनिक संघटन की सी अवस्था को प्राप्त होने के साथ घटती जाती है, जो अपघटन एक मध्यवर्ती उत्पाद की अवस्था कही जा सकती है। जैव पदार्थ के अंतिम अपघटन उत्पादों में कार्बन डाइऑक्साइड, जल, नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फेट, मेथेन, अमोनिया तथा हाइड्रोजन सल्फाइड आदि है। यह परिवर्तन इस बात पर निर्भर करता है कि अपघटन वायुजीवी है अथवा अवायुजीवी। इन प्रक्रियाओं के लिए

सूक्ष्मजीव और उनके एन्जाइम अधिकतर उत्तरदायी होते हैं। वस्तुतः मृदा में जैव पदार्थ का अपघटन एक पाचन प्रक्रिया की तरह होता है। जैव पदार्थ के भली–भांति अपघटन हेतु पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है।

मृदा से पर्याप्त मात्रा में फसलोत्पादन प्राप्त करने तथा मृदा के संरक्षण हेतु जैव पदार्थ के प्रबंधन की आवश्यकता है। प्रबंधन का प्रकार मृदा की प्रकृति, जलवायु और भावी भूमि पर निर्भर करता है। इन सबका लक्ष्य मृदा में पर्याप्त मात्रा में पोषक एवं स्थायी ह्यूमस उपलब्ध कराना है। इसके लिए पर्याप्त मात्रा में जैव पदार्थ का उत्पादन तथा जहां तक संभव हो, गहराई तक मृदा परिच्छेदिका में ह्यूमस को वितरित करना होता है। इस तरह के प्रबंधन में उर्वरकीकरण हेतु चूना डालना, ऐसी फसलों को उगाना जिनसे मृदा की भीतर और मृदा के ऊपर पर्याप्त मात्रा में पादप अवशेष प्राप्त होते हैं, सम्मिलित हैं। इस संबंध में घास वाले पौधों की रेशेदार जड़ें तथा पतीदार पौधों की गहराई तक जाने वाली जड़ों का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

अधिकतम ह्यूमस निर्माण के लिए अवशेषों के कार्बनमय घटकों को जोड़ने के लिए नाइट्रोजन की पर्याप्त मात्रा चाहिए। वास्तव में ह्यूमस उत्पादन में नाइट्रोजनी यौगिक और लिग्निन महत्वपूर्ण हैं। यदि जैव पदार्थ का कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात 30:1 से अधिक होता है तथा मृदा में उपस्थित खनिज नाइट्रोजन की पूर्ति से नाइट्रोजन मिल जाती है। मृदा की ऊपरी परत में जैव पदार्थ की उपस्थिति विशेष रूप से लाभदायक होती है, इसलिए जैव पदार्थ का मुख्य रूप से यहीं संचय होना चाहिए। मृदा की ऊपरी 5 सेमी. की परत में जैव पदार्थ का मिलाना, अधिकांश पादप अवशेषों को मृदा के ऊपर छोड़ने की अपेक्षा अधिक उत्तम है।

स्मरण रहे, जैव पदार्थ के बेहतर प्रबंधन हेतु फसल अवशेषों को ऐसी दर से व ऐसे समय अपघटित होने दिया जाए कि सूक्ष्मजीवों के लिए आवश्यक नाइट्रोजन व अन्य पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा मिलती रहे तथा वर्धनशील फसल के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा में कटौती न हो। यह बात यही है कि जैविक खादे आज की अधिक पैदावार देने वाली किस्मों की पोषक तत्वों की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकती। उनसे अधिक पैदावार के लिए रासायनिक उर्वरक तो डालने ही पड़ेगे परंतु दोनों प्रकार की खादों का उपयोग करके हम भूमि की उपजाऊ शक्ति को लंबे समय तक कायम रख सकते हैं।

ooo

सर्पगंधा : एक संकटापन्न उपयोगी वनौषधि

डॉ. दिलीप कुमार मौर्य

भारतीय उपमहाद्वीप और अफ्रीका के विभिन्न भागों में पाया जाने वाला पादप सर्पगंधा अत्यंत उपयोगी वनौषधि है। वर्षों से अपने अस्तित्व का संकट झेल रहे इस पौधें में ढेरों रोग निवारक विशेषताएं, प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित हैं। प्राचीन भारतीय ग्रंथ *सुश्रुत संहिता* (1000– 800 ई.पू.) में भी इसकी चर्चा हुई है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी अपनी खोजों से इसकी विशेषताओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। इस पौधे के औषधीय गुणों के संबंध में आयुर्वेद में कहा गया है–

नाकुली सुरसा नागसुगंधा गंध नाकुली।
नकुलेष्ठ भुजंगाक्षी सर्पांगी विषनाशिनी।
नाकुली तुवरा तिक्ता कटुकोष्णा विनाशयेत।
मोगिलतावृश्चिकाखु, विषज्वरकृमित्रगान।

सर्पगंधा की विशेषता के साथ ही उसके परिचय पर प्रकाश डालते हुए इस श्लोक में कहा गया है कि– नागली कंद, नाकुली, सुरसा, नागसुगंधा, नकुलेष्ठा, भुजंगाक्षी, सर्पांगी एवं विषनाशिनी आदि इसके आयुर्वेदिक नाम हैं। यह सांप, बिच्छू, चूहे और मकड़ी के विष के प्रभाव को दूर करने के साथ ही ज्वर, कृमि तथा व्रण से भी मुक्ति दिलाती है।

वानस्पतिक नाम : परिचय और विशेषताएं

सदाबहार, बहुवर्षीय सर्पगंधा का झाड़ीनुमा पौधा सामान्यतया दो से तीन फुट तक ऊँचा होता है। पुष्पीय पौधों के दो बीजों वाले इस पादप की पत्तियां प्रायः तीन से छह इंच तक लंबी, डेढ़ इंच चौड़ी तथा नोंकदार होती हैं। इसकी पत्तियों की बनावट आम और अड़ूस से मिलती–जुलती लेकिन छोटे डंठल वाली होती है। इसकी पत्तियों के ऊपरी भाग का रंग गाढ़ा तथा निचले भाग का रंग हल्का होता है। मैदानी क्षेत्रों में इनकी मंजरियों (डाल के ऊपरी सिखे) पर फूल और फल लगते हैं। उत्तरी भारत के मैदानी इलाकों में इस पर जाड़े के नवंबर–दिसंबर में सफेद या गुलाबी फूल आते हैं। इसके फल गुठलीदार छोटे–छोटे, मांसल और आपस में दो–दो की संख्या में जुड़े और अकेले भी मिलते हैं। इनके हरे फल पकने पर बैंगनी या काले रंग के हो जाते हैं। सर्पगंधा का सबसे उपयोगी हिस्सा इसकी जड़ है। रोगोपचार में इसकी जड़ का ही सर्वाधिक प्रयोग होता है। इसकी जड़ जमीन में प्रायः 18 से 20 इंच तक की गहराई तक जाती है। सर्पगंधा का वानस्पतिक नाम 'रावॉल्फिया सर्पेंटाइना (Rauvolfia Serpentina) है। इसे 'आफियोकाइलॉन सर्पेटिनय (Ophiocylon Serpentinum) भी कहते हैं। अंग्रेजी में यह सर्पेटिन (Serpentine) के नाम से जानी जाती है। उत्तर प्रदेश और बिहार के भोजपुरी क्षेत्रों में इसे 'धवलबरुआ' कहते है। ओडिशा में ब्रेनरना, सनोचाड़ो; बंगाल में नाकुली, गंधरास्ना, चंद्र; तेलगू में पाठा अंगधि; मलयाली में चुवन्ना अवकिपोरी; फारसी में छोटा चंदा और लेटिन में इसे राउल्फिया सर्पेटिना कहते हैं।

रोगोपचार में सर्पगंधा

सर्पगंधा की जड़े तिक्त, पौष्टिक, ज्वरहर, निद्राकारी, शामक, गर्भाशय उत्तेजक तथा विषहर होती है। भारत में प्राचीन काल में सर्पगंधा की जड़ों का उपयोग प्रभावी विषशामक के रूप में सर्पदंश तथा कीटदंश के विषोपचार में होता था। मलेशिया तथा इंडोनेशिया के उष्ण–

कटिबंधीय घने वनों में निवास करने वाली जनजातियां लंबे समय से सर्पगंधा का उपयोग कीटदंश, सर्पदंश तथा विच्छूदंश के उपचार में करती हैं। पारंपरिक चिकित्सा पद्धति में सर्पगंधा की जड़ों का उपयोग उच्च–रक्तदाब, ज्वर, वातातिसार, अतिसार, अनिद्रा, उदरशूल, हैजा आदि के उपचार में होता है। जड़ों का रस अथवा अर्क उच्च–रक्तदाब की औषधि के रूप में फोड़े–फुंसियों (pimples-boils) के उपचार और प्रसव पीड़ा के दौरान बच्चे के जन्म को सुगम बनाने हेतु किया जाता है। जड़ों के अर्क का प्रयोग हिस्टीरिया (hysteria) तथा मिर्गी (epilepsy) के उपचार में भी होता है। इसके अतिरिक्त घबराहट तथा पागलपन (Insanity) के उपचार में भी सर्पगंधा की जड़ों का प्रयोग किया जाता है। सर्पगंधा की पत्तियों का रस नेत्रज्योति को बढ़ाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग त्वचा की बीमारियों जैसे– सोरियासिस (psoriasis) तथा खुजली के उपचार में भी होता है। परंपरागत रूप से माताएं सर्पगंधा का प्रयोग रोते हुए बच्चों को सुलाने के लिए भी करती हैं। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में जड़ों से निर्मित औषधियों का उपयोग रक्त–उच्चदाब को कम करने तथा स्वापक के रूप में अनिद्रा के उपचार में किया जाता है। इसके अतिरिक्त रोग भ्रम की स्थिति तथा अन्य प्रकार के मानसिक विकारों के उपचार में भी सर्पगंधा का प्रयोग किया जाता है। सर्पगंधा से निर्मित औषधियों का प्रयोग एलोपैथी में तंत्रिका एवं मनोरोग (neuropsychiatrics) तथा वृद्धावस्था से संबंद्ध रोग, हृद्शूल तथा तीव्र अथवा अनियमित हृद स्पंद, मासिकधर्म, विकार तथा रजोनिवृत्ति संलक्षण के उपचार में भी किया जाता है।

प्राप्ति क्षेत्र – सर्पगंधा का पौधा उष्ण कटिबंधीय हिमालयी क्षेत्र के साथ ही हिमालय के निचले प्रक्षेत्र–सरहिंद से पूरब में सिक्किम तक पाया जाता है। यह असम, देहरादून, शिवालिक की पहाड़ियों, रुहेलखंड, उत्तरी अवध तथा प्रायद्वीप भारत के पश्चिमी तट के किनारे भी पाया जाता है। यह अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में भी उगता है। भारत के बाहर एशिया में यह श्रीलंका, म्यांमार, मलेशिया, इंडोनेशिया, चीन और जापान में भी पाया जाता है। एशिया के बाहर सर्पगंधा दक्षिणी अमेरिका और अफ्रीका महाद्वीप में भी उगता है। इसकी सर्वाधिक प्रजातियां दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में पाई जाती है।

प्राचीन भारत में सर्पगंधा – भारतीय चिकित्सा जगत में सर्पगंधा का वर्णन *चरक संहिता* (1000–800 ई.पू.) में सर्पदंश तथा कीटदंश के उपचार के संदर्भ में विषनाशक के रूप में मिलता है। भारतीय जनमानस में सर्पगंधा से संबंधित अनेक किंवदंतियां प्रचलित है। ऐसी ही एक किंवदंती के अनुसार कोबरा सांप से लड़ने के पहले नेवला सर्पगंधा की पत्तियों का रस चूसकर युद्ध के लिए सर्प विषप्रतिकारी शक्ति का संचय करता है। एक अन्य प्रचलित किंवदंती के अनुसार सांप के काटने पर सर्पगंधा का ताजा पिसी हुई पत्तियों को पांव के तलवे पर लगाने से आराम मिलता है। इसी प्रकार सर्पगंधा के विषय में चर्चा है कि – इसकी जड़ों को पीसकर पीने से पागलपन दूर हो जाता है। संभवतः यही कारण है कि भारत में सर्पगंधा को पागलपन की औषधि के रूप में देखा गया है। वास्तव में मानसिक रोगियों की मुख्य समस्या अनिद्रा और इसके निद्राकारी गुण, मन–मस्तिष्क को शिशिल कर नींद ला देते हैं।

इस पौधे के 'सर्पगंधा' नामकरण के संबंध में भी कई तरह की चर्चाएं प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि चूँकि इसकी गंध के चलते सांप इसके पास नहीं आते। इसीलिए इसे सर्पगंधा कहा जाता है। वहीं कुछ लोगों का कहना है कि इसकी जड़ सांप की तरह होती है, इसीलिए इसे सर्पगंधा कहते हैं। 'सर्पगंधा' के नामकरण के विषय में उक्त दोनों चर्चाओं से हटकर प्राचीन काल में इस वनस्पति की सर्पविष के उपचार की उपयोगिता ज्यादा तथ्यपरक लगती है।

आधुनिक वैज्ञानिकों की दृष्टि से सर्पगंधा

सत्रहवीं शताब्दी के चर्चित फ्रांसीसी वनस्पति वैज्ञानिक प्लामियर्स ने सोलहवीं शताब्दी के महान वनस्पति विज्ञानी अनुसंधानकर्ता, पर्यटक और लेखक

लियोनार्ड रौवाल्फ के सम्मान में सर्पगंधा का नामकरण 'रावॉल्फिया' किया था। अंग्रेज विज्ञान लेखक रम्फियस ने सर्पगंधा के विषय में लिखा है– भारत तथा जावा (इंडोनेशिया) में इस पौधे का उपयोग समस्त श्रेणी के विषों के प्रभाव को समाप्त करने के लिए होता था। इसकी पत्तियों से तैयार लेप को एड़ी तथा तलुओं के साथ ही घुटनों के नीचे तक लगाया जाता था। उस समय सर्पदंश के उपचार की यह चर्चित औषधि थी जो जहरीले सांपों के विष का भी शमन कर देती थी। इसके अर्क और पिसी जड़ के सेवन से हैजा, ज्वर और अतिसार में राहत मिलती है। इसकी पत्तियों के रस से मोतियाबिंद का उपचार होता है।

'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' के संस्थापक सर विलियम जोंस ने भी सर्पगंधा के संबंध में कुछ इसी तरह की बातें कही हैं। भारतीय वनस्पतियों के चर्चित वैज्ञानिक विलियम रॉक्सवर्ड के अनुसार भारत में परंपरागत चिकित्सक (वैद्य) सर्पगंधा का प्रयोग प्रसव पीड़ा, ज्वर से बचाव तथा विषशमन के लिए करते थे।

आधुनिक शोधकर्ताओं में सिद्दकी और सिद्दकी (1931) और वकील (1941) के द्वारा किए अनुसंधानों से इस पौधे को विशेष स्थान प्राप्त हुआ। 1952 में शिल्टर और बेन नामक वैज्ञानिकों ने सर्पगंधा की जड़ों में 'रेसर्पिन' नामक क्षार की खोज की जिससे सर्पगंधा की विश्वव्यापी चर्चा हुई।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने अपने शोध से सर्पगंधा की जड़ में 55 से अधिक क्षारों की उपस्थिति को ज्ञात किया है। सर्पगंधा में पाए जाने वाले 80 प्रतिशत क्षार उसकी जड़ की छाल में पाए जाते हैं।

सर्पगंधा की जड़ में पाए जाने वाले रासायनिक तत्व

इसके मूल में संपूर्ण क्षार की मात्रा 0.8–1.3 प्रतिशत रहती है। जिसमें अजमेलीइन (ajmalinine $C_{20}H_{26}O$, $N_2.3H_2O$) अजमलीनीन (ajmalinine $C_{20}H_{26}O_3N_2$, $1.5H_2O$) तथा पीत वर्ण के क्षार–सर्पेटाइन (serpentine $C_{20}H_{20}O_3N_2$, $1.5H_2O$) तथा बिना रवेदार क्षार रहते हैं। इनके अतिरिक्त उभयविध अभिक्रिया दर्शाने वाले कुछ अन्य क्षार भी उपस्थित रहते हैं। इसके मूल में एक तैलीय राल (oleoresin) तथा सरपोस्टेरॉल (serposterol $C_{30}H_{48}O_2$) रहता है। इसमें उपस्थित अजमलाइन, सर्पेन्टाइन और सर्पेन्टिनाइन श्रेणी के क्षार केंद्रीय वात संस्थान की उत्तेजित करते हैं, जिसमें सर्पेन्टाइन अधिक प्रभावशाली है। कुछ क्षार निश्चित रूप से हृदय, रक्तवाहिनी तथा वाहिका प्रेरक केंद्र (vaso motor centre) के लिए अवसादक (depressant) होते हैं।

विगत कुछ वर्षों से इस वनौषधि पर हुए विशेष शोध के आधार पर इसमें प्राप्त सक्रिय तत्व को 'रीसपीन' (resperpine) नाम दिया गया है। जो मूल की अपेक्षा एक हजार गुना अधिक प्रभावकारी माना जाता है। यह गंडिका अवरोध (ganglionic blokcade) उत्पन्न नहीं करता, और रक्तदाब को कम करने में इसकी मुख्य भूमिका इसी कारण है।

सर्पगंधा का वर्तमान संकट

सहज वानस्पतिक प्रवृत्ति वाले इस उपयोगी गुणकारी औषधीय वनस्पति के अनियंत्रित उपयोग और अत्यधिक दोहन तथा संरक्षण के अभाव से इसकी उपलब्धता तेजी से घट रही है। अंतरराष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधन संघ द्वारा प्रकाशित 'रेड डाटा बुक' (Red Data Book) के अनुसार आज भारत के उष्ण–कटिबंधीय हिमालय तथा उसके निचले प्रदेशों में सर्पगंधा को संकटग्रस्त वनौषधि की श्रेणी में शामिल कर लिया गया है। संकटग्रस्त श्रेणी में उन वनस्पतियों को शामिल किया जाता है जिनकी मात्रा इतनी घट जाती है कि निकट भविष्य में उनके लुप्त हो जाने का खतरा पैदा हो गया है।

रोगोपचार में सर्वाधिक प्रयोग सर्पगंधा की जड़ों का ही होता है। जड़ प्राप्ति में इसका पूरा का पूरा पौधा समाप्त हो जाता है। जड़ों की प्राप्ति पौधे के विनाश के बिना संभव नहीं होती। सर्पगंधा की दिनोदिन होती कमी का सबसे बड़ा कारण भी यही है। बढ़ती आबादी तथा कृषि कार्य के लिए वन क्षेत्रों का कृषि क्षेत्रों में परिवर्तन से इन वनौषधीय पादप का बुरी तरह विनाश हो रहा है। आधुनिक कृषि में रासायनिक कीटनाशकों

और खर–पतवार नाशकों के अंधाधुंध प्रयोग ने भी सर्पगंधा के प्राकृतिक स्थलों को हानि पहुंचाई है।

बदलते हुए परिवेश में इस अत्यंत उपयोगी पौधे के बचाव के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता है। इसके लिए वनस्पति वैज्ञानिकों और कृषि वैज्ञानिकों की उपयोगी भूमिका हो सकती है। वनौषधीय पौधों की खेती में हमें इस बात का पूरा ध्यान रखना होगा कि इनकी व्यावसायिक खेती के दौरान इनकी मौलिक गुणवत्ता में कमी न आए। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन वनौषधियों में पाए जाने वाले उपयोगी तत्व अधिकतम रसायनों के रूप में ही पाए जाते हैं, जो इस पादप के प्राकृतिक पल्लवन में ही संरक्षित रहते हैं। इसकी खेती में रासायनिक कीटनाशकों और खादों के प्रयोग से बाहरी रसायनों के प्रभाव से इन पादपों के मूल रासायनिक संघटन और गुणो में यथेष्ट परिवर्तन आ सकता है। हमारे कृषि विशेषज्ञों ने वनौषधियों की प्राकृतिक खेती में रासायनिक कीटनाशकों की जगह जैविक कीटनाशकों और खादों के उपयोग का सुझाव दिया है।

सर्पगंधा की खेती

जलवायु और मृदा : आमतौर पर सर्पगंधा के लिए उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु सर्वथा उपयुक्त होती है। सामान्यतया सर्पगंधा 6.5 से 8.5 पी.एच. मान वाली जीवांश संपन्न अम्लीय बलुई, दोमट तथा चिकनी एवं काली मिट्टी में सुविधापूर्वक उगता है। जल जमाव वाले क्षेत्र में इसका पौधा विकास नहीं कर पाता है। सर्पगंधा के लिए 10^0 से 38^0C के बीच का ताप ठीक माना जाता है। सामान्यतया सर्पगंधा नम और छायादार स्थान पसंद वनौषधि है। अतः इसकी अंतरासस्य कृषि अत्यंत लाभकारी होती है। आम, जामुन, आंवला जैसे बड़े फलदार वृक्षों एवं शीशम, साखू, सागवान, अर्जुन और सहजन के बागों के बीच में इसकी खेती, किसानों को दोहरा लाभ प्रदान कर सकती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हिमालय के तराई वाले बागानी किसानों को इसकी अंतरराष्ट्रीय कृषि तकनीक में प्रशिक्षित किया जाए ताकि बागान कृषकों को अधिक–से–अधिक लाभ प्राप्त हो सके।

सर्पगंधा की नर्सरी में बिजाई

एक एकड़ क्षेत्रफल के लिए सामान्यतः 2.5–3 किग्रा. सर्पगंधा बीज की आवश्यकता होती है। एक वर्ष से अधिक समय के संग्रहीत बीजों का जमाव प्रतिशत काफी कम हो जाता है। अतः हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि बीज नया हो, सितंबर से दिसबंर माह में एकत्रित बीजों का अंकुरण प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक रहता है। सर्पगंधा की आर.एस.–1 प्रजाति उत्कृष्ट मानी जाती है, क्योंकि इसका अंकुरण 50–60 प्रतिशत तक होता है एवं 18 महीने में इसकी जड़ों में प्रमुख तत्व की उपस्थिति अधिकतम (1.4 प्रतिशत) हो जाती है। एक एकड़ की खेती की नर्सरी के लिए धूप–छांव युक्त लगभग 200 वर्ग मीटर क्षेत्रफल की आवश्यकता होती है। प्रत्येक क्यारी 1.5 मीटर चौड़ी व सुविधानुसार लंबी रखते हुए खेत की सतह से 15–20 सेमी. ऊँची बनाई जाती है। इसमें एक तिहाई हिस्सा तैयार गोबर या कंपोस्ट की खाद तथा दो तिहाई हिस्सा मिट्टी का होता है, तत्पश्चात् अप्रैल–मई में नमीयुक्त क्यारियों में खर–पतवार निकालकर मई के प्रथम सप्ताह में गोमूत्र से उपचारित बीज को 8 सेमी. दूर कतारों में नजदीक–नजदीक 1–2 सेमी. गहराई में बोया जाता है। लगभग 15–20 दिनों बाद अंकुरण प्रारंभ होकर 30–35 दिन में पूर्ण जमाव हो जाता है। जुलाई के प्रथम सप्ताह तक 4–6 पत्तियों वाले पौधे खेत में रोपने के लिए तैयार हो जाते है।

सर्पगंधा की खेती हेतु प्रस्तावित खेत की तैयारी : जुलाई के प्रथम सप्ताह या नर्सरी (पौध) में पौधे तैयार हो, उसके पहले दो जुताई करके खेत को खर–पतवार रहित बना लेना चाहिए। पौधे लगाने से पहले एक एकड़ खेत में गोबर या कंपोस्ट की खाद 8–10 टन छिड़क कर पुनः जुताई करके पाटा चलाते हैं, ताकि खेत समतल हो जाए। जुलाई के प्रथम सप्ताह में जब 100–120 मिमी. की वर्षा हो जाए तब कतार से

कतार की दूरी 45 सेमी. और पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी. रखते हुए पौधरोपण करते हैं। कुछ पौधे नर्सरी में बचाकर रखना चाहिए, क्योंकि रोपण के बाद यदि कुछ पौधे मर जाएं तो शेष बचे पौधों द्वारा रिक्त स्थानों को भरा जा सके।

सर्पगंधा की निदाई, गुड़ाई व सिंचाई : सर्पगंधा की प्रायोजित खेती में यह एक लंबी अवधि वाली फसल है। अतः अन्य फसलों की तरह इसके निराई, गुड़ाई तथा सिंचाई की भी आवश्यकंता होती है। प्रथम वर्ष में करीब 2–3 निराई, गुड़ाई की आवश्यकता होती है। जबकि दूसरे वर्ष 1–2 बार ही निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है। पौधरोपण बरसात में करते हैं। इसलिए वर्षा का पानी ही पर्याप्त होता है लेकिन अगर समय से बारिश न हो तो कृत्रिम साधनों जैसे पम्पिंग सेट अथवा स्प्रिंकलर द्वारा सिंचाई करते हैं। गर्मी के दिनों में 20 दिनों के अंतराल पर और जाड़े में 30 दिनों के अंतराल पर पानी दिया जाना चाहिए। इस प्रकार 18 माह की इस फसल को कुल 15–16 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है।

रोग एवं रोकथाम : सामान्यतया सर्पगंधा की फसल पर रोगों व कीड़े–मकोड़ों का प्रकोप कम देखा गया है। कभी–कभार सर्पगंधा की पत्तियों पर फफूंद की सफेद परत दिखाई देने पर इसका निराकरण जैविक पद्धति द्वारा किया जा सकता है।

उपज की प्राप्ति : सर्पगंधा की जड़ों में डेढ़ वर्ष पश्चात् एल्केलॉइड की उपयुक्त मात्रा हो जाती है। इस आधार पर सर्पगंधा का परिपक्वता काल डेढ़ वर्ष से दो वर्ष का होता है। डेढ़ वर्ष से अधिक समय तक फसल खेत में रहने पर उसके उत्पादन में वृद्धि होती है। डेढ़ से दो वर्ष पश्चात् सर्पगंधा की फसल, खेत से निकाली जाती है तो एक एकड़ क्षेत्रफल से लगभग 8–9 क्विंटल सूखी जड़े प्राप्त होती है और लगभग 25 किग्रा. बीज की प्राप्ति होती है। सर्पगंधा की जड़ों का वर्तमान बाजार भाव 80–90 रुपये प्रति किग्रा. है जबकि बीज 2000–2500 रुपये प्रति किग्रा. बिकता है। उपर्युक्त आधार पर सर्पगंधा की खेती पर होने वाले आय–व्यय की नीचे दी गई सारणी के आधार पर सुगमतापूर्वक इसके आर्थिक पक्ष को समझा जा सकता है।

सर्पगंधा का आर्थिक पक्ष

(अ) मददवार आय	रुपये
खेती की नर्सरी	2,000.00
नर्सरी पर	1,000.00
बीज पर (3 किग्रा. रु. 3,000/– प्रति किग्रा की दर से)	9,000.00
पौध विस्थापन पर	1,000.00
निराई-गुड़ाई एवं खर-पतवार पर	2,000.00
गोबर की खाद/कंपोस्ट	1,000.00
सिंचाई	1,000.00
फसल की देखभाल पर	1,000.00
श्रमिक खर्च (बीज संग्रहण, फसल खेत से उखाड़ना)	3,000.00
अन्य	2,000.00
कुल व्यय	**23,000.00**

(ब) आय	रुपये
8–9 क्विंटल सूखी जड़ (80/– रुपये प्रति किग्रा. की दर से)	64,000.00
बीज (25 किग्रा. 2,000/– रुपये प्रति की दर से)	50,000.00
कुल	**1,14,000.00**

कुल आय – कुल व्यय = शुद्ध लाभ
(1,14000.00 – 23,000.00 = 91,000.00)

○○○

7

स्पाइरोमीटर

डॉ. जे एल अग्रवाल

जीवन का प्रारंभ जन्म लेते ही बच्चे के रोने से होता है, जिससे उसकी श्वॉस चलने लगती है, जीवन का अंत भी अंतिम श्वॉस छोड़ने के साथ हो जाता है। श्वॉस द्वारा हवा फेफड़ों में पहुंचती है और फिर फेफड़ों के कोष्ठकों से ऑक्सीजन, रक्त में मिल जाती है। शरीर में जैव रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा उत्पन्न कार्बन डाईऑक्साइड फेफड़ों में आकर, श्वॉस बाहर निकालने पर वायु मंडल में मिल जाती है। श्वसन तंत्र की क्षमता से मुख्यतः कार्यक्षमता निर्धारित होती है। श्वसन तंत्र का संपर्क निरंतर वातावरण से बना रहता है। वातावरण में फैले जीवाणु, हानिकारक प्रदूषित तत्व, श्वॉस लेने पर श्वसन तंत्र में पहुंच कर इसको आसानी से क्षतिग्रस्त कर सकते हैं। श्वसन तंत्र के रोग अति सामान्य है। बढ़ते प्रदूषण के कारण श्वसन तंत्रों के रोगों जैसे दमा, क्रॉनिक ब्रांकाइटिस रोगों का प्रकोप बढ़ रहा है।

श्वसन तंत्र की क्षमता जानने के लिए इसके विभिन्न रोगों के निदान के लिए 'पलमोनरी फंक्शन परीक्षण' (Pulmonary Function Test) किए जाते हैं। इनमें से कुछ मुख्य परीक्षण 'स्पाइरोमीटर मशीन' (Spirometer) से की जाती हे यह प्रक्रिया स्पाइरोमीटरी (Spirometery) कहलाती है। यह शब्द ग्रीक शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है– श्वास नापना।

स्पाइरोमीटर द्वारा यह पता लगता है कि कितनी हवा फेफड़ों से विभिन्न श्वसन प्रक्रियाओं के दौरान अंदर जा सकती है, या बाहर निकाली जा सकती है।

स्पाइरो मीटरी की कब आवश्यकता

- फेफड़ों के रोगों जैसे दमा, क्रोनिक आब्सस्ट्रेक्टिव पलमोनरी डिसआर्डर (सी.ओ.पी.डी.) रोग इत्यादि के निदान, इनकी गंभीरता का पता लगाने के लिए।
- श्वॉस फूलने की समस्या में कारण का पता लगाने के लिए।
- इन रोगों में उपचार के परिणाम का पता लगाने के लिए कि रोग में सुधार हो रहा है, या बढ़ रहा है।
- रोग पर दवा के प्रभाव के आकलन के लिए तथा सही दवा का चुनाव करने के लिए।
- फेफड़ों पर कार्यस्थल के प्रदूषण के दुष्प्रभाव का आकलन करने के लिए।
- फेफड़ों की क्षमता से कार्यक्षमता का भी पता लगाया जा सकता है।
- कुछ ऑपरेशनों से पूर्व भी फेफड़ों की क्षमता का पता लगाने के लिए स्पाइरोमीटरी की जाती है।

स्पाइरोमीटर

अब विभिन्न मॉडलों और आकार की स्पाइरोमीटर उपलब्ध हैं। आधुनिक स्पाइरोमीटर अब यू.एस.बी., पी.सी. आधारित होती है। इसमें टरबाइन होता है, जिसमें श्वॉस लेने, बाहर निकालने पर वायु प्रवाह के कारण पंखा घूमता है, पंखे घूमने पर यह इसकी किरणों को काटते है, जिससे हवा बहाव की मात्रा और गति का कंप्यूटर पर ग्राफ में लूप के रूप में रिकॉर्ड होती है।

स्पाइरोमीटरी से यह पता लगता है कि विभिन्न श्वसन, क्रियाओं में कितना समय लगता है, कितनी मात्रा और गति से हवा फेफड़ों में जाती है, या बाहर निकलती है।

कंप्यूटर विभिन्न प्रक्रियाओं के दौरान होने वाले समय, गति, मात्रा को मॉनीटर पर दर्शाता है, साथ ही यह उस व्यक्ति की लंबाई, वजन, आयु, लिंग तथा जाति के औसतन मानक से तुलना कर उसके मानक के प्रतिशत में गणना भी कर देते हैं। स्पाइरोमीटर द्वारा मुख्यतः आराम से श्वॉस लेते समय हवा की मात्रा टाइडल वाल्यूम (tidal volume) गहरी श्वॉस लेने के बाद ज्यादा से ज्यादा श्वॉस बाहर निकालना, वाइटल कैपेसिटी (vital capacity) या फोर्स एक्सपायरेटरी कैपेसिटी (forced expiratory capacity) पहले एक सेकेंड में वायु निकलने की मात्रा (Fevi) तथा एक मिनट में अधिकतम श्वॉस लेने की मात्रा (एम. वी.वी.) इत्यादि रिकॉर्ड की जा सकती है।

जांच से पूर्व हिदायते

- यदि सिगरेट, बीड़ी सेवन करते हैं, तो जांच से 4 से 6 घंटे पूर्व से इनका सेवन न करें।
- जांच से पूर्व गरिष्ठ भोजन न करे जिससे गहरी श्वॉस लेने में दिक्कत न हो।
- ढीले कपड़े पहने, बेल्ट न बांधे।
- यदि पहले से श्वसन नलियों को फैलाने वाली दवाएं सेवन करते है, सुंघनी (इन्हेलर) का उपयोग करते है, तो चिकित्सक को बताएं। चिकित्सक बताएंगे कि कौन–सी दवा कितनी पहले बंद करें।
- यदि ढीले नकली दांत लगाते हैं तो जांच के पूर्व निकाल दे।
- जांच पूर्णतः सुरक्षित है। जांच के सही परिणाम के लिए पूर्ण सहयोग आवश्यक होता है।
- हार्ट अटैक के शीघ्र बाद एंजाइना, न्यूमोथोरेक्स, टी.बी. के सक्रिय रोगियों में यह जांच नहीं की जा सकती है।
- छोटे बच्चों में भी जांच संभव नहीं होती, क्योंकि वे हिदायतों का पालन नहीं कर पाते। 4 से 5 वर्ष आयु के बाद यह जांच को जा सकती है।
- जांच के बाद कुछ व्यक्ति श्वॉस लेने के कारण थक जाते हैं, उनको कुछ समय आराम करना चाहिए।
- जांच के बाद कुछ व्यक्तियों को सर हल्का महसूस हो सकता है, चक्कर आ सकते हैं, इनको कुछ देर आराम करना चाहिए। स्वस्थ महसूस करने पर ही घर जाएं।
- पूरे जांच की प्रक्रिया में 45 से 60 मिनट का समय लगता है।

जांच की प्रक्रिया

जांच से पूर्व वजन, लंबाई नापी जाती है, कंप्यूटर पर नाम, लिंग इत्यादि रिकॉर्ड दिया जाता है।

जांच के पूर्व किसी विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं होती। प्रायः यह जांच आराम से बैठकर की जाती है। नाक को बंद करने के लिए नोज क्लिप लगाया जाता है, जिससे श्वॉस सिर्फ मुंह द्वारा ही ले सकें। मुंह में ओठों और दांतों के मध्य माउथपीस लगाया जाता है, जो ट्यूब द्वारा स्पाइरोमीटर के टरबाइन से जुड़ा होता है। कुछ समय ट्यूब से श्वॉस लेने के अभयस्त होने के पश्चात् जांचकर्ता विभिन्न रूप से जैसे ज्यादा–से–ज्यादा श्वॉस अंदर लेने के बाद तेजी से और ज्यादा–से–ज्यादा मात्रा में श्वॉस बाहर छोड़ने इत्यादि प्रक्रिया करने का निर्देश देते है। यह सब प्रक्रियाएं कम–से–कम तीन बार करवाई जाती है, जिससे व्यक्ति की अधिकतम क्षमता का आकलन हो सके।

विशेषकर दमा के मरीजों में प्रभावी दवा का पता लगाने के लिए सुंघनी द्वारा दवा सुंघाने के बाद यह टेस्ट दुबारा किया जाता है, यह पोस्ट ब्रांको डायलेटर टेस्ट (post broncho dilator) कहलाता है।

कुछ स्थिति में श्वसन तंत्र की अति संवेदनशीलता का पता लगाने के लिए कुछ दवाओं जैसे मिथाकोलीन या हिस्टामिन देने के बाद या ठंडी, सूखी हवा में श्वॉस लेने के बाद भी यह टेस्ट किया जा सकता है।

जांच में परिणाम कंप्यूटर पर रिकॉर्ड होते हैं, चिकित्सक टेस्ट के परिणाम से रोग का निदान, रोग की गंभीरता का पता लगाकर समुचित उपचार करते हैं। पुनः जांच करने से उपचार के परिणाम का भी पता लगता है। स्पाइरोमीटर द्वारा विकंलागता का आकलन भी हो सकता है। खिलाड़ियों में इस जांच से क्षमता का पता भी लगाया जा सकता है। स्पाइरोमीटर जांच के अतिरिक्त फेफड़ों की कार्यक्षमता के आकलन के लिए कभी–कभी रक्त में ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड अम्लीयता की माप भी रक्त का नमूना लेकर की जाती है। कुछ अन्य विशिष्ट जांचे भी की जा सकती है। दमा के मरीजों में उपचार के प्रभाव का पता लगाने के लिए अब घर में स्वयं ही उपयोग में लाने वाले स्पाइरोमीटर भी उपलब्ध है।

ooo

8

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव तथा उसके बचाव के उपाय

डॉ. इंदु भूषण पांडेय एवं डॉ. दीनानाथ शुक्ला

जलवायु के विभिन्न घटकों, जैसे– ताप एवं वर्षा में हो रहे बदलाव को जलवायु परिवर्तन कहते हैं। उदाहरण के तौर पर किसी क्षेत्र विशेष में लगातार सामान्य से अधिक या कम वर्षा का होना अथवा ताप में कमी या बढ़ोत्तरी का होना। पृथ्वी का अपना जलवायु तंत्र है तथा किसी भी स्थान की अपनी एक निश्चित जलवायु होती है, जिसे वहां की धूप, वर्षा, हवा, ताप, आर्द्रता आदि मिलकर निर्धारित करते हैं। जलवायु के विभिन्न घटकों में सामान्य रूप से लगातार कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता रहता है, जिससे वहां पर रहने वाले प्राणी एवं वनस्पतियां परिवर्तन के अनुकूल अपना सामंजस्य बनाते रहते हैं। जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल (IPCC) की चौथी आकलन रिपोर्ट से पता चलता है कि जलवायु तंत्र में ताप वृद्धि, वायु तथा समुद्र के ताप में वृद्धि तथा बड़े पैमाने पर हिमनदों के पिघलने से औसत समुद्र स्तर में बढ़ोत्तरी हो रही है। रिपोर्ट से पता चलता है कि 2100 तक विश्व का ताप 1.4 से 5.8 सें.ग्रे. तक बढ़ सकता है, जिसका विश्व के जलीय तंत्र, समुद्र स्तर तथा कृषि पर गंभीर प्रभाव पड़ सकते हैं। यह प्रभाव भारत सहित उष्णकटिबंधीय देशों में भी गंभीर हो सकता है। भारतीय क्षेत्रों के ताप में 2020 तक 0.5-1.2 सें.ग्रे., 2050 तक 0.88-3.1 सें.ग्रे. तथा 2080 तक 1.56-5.44^0 सें.ग्रे. वृद्धि की संभावना बताई जा रही है। ऐसा अनुमान है कि 21वीं शताब्दी के अंत तक वर्षा में 15 से 40 प्रतिशत तथा औसत वार्षिक ताप में 3-6^0 सें. ग्रे. की वृद्धि हो जाएगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जलवायु परिवर्तन अपरिहार्यतः उच्च ताप से संबंधित है। उच्च ताप, गर्म तरंगे, सूखे की बढ़ती आवृत्ति तथा जोरदार वर्षा के कारण बाढ़ आदि का आना जैसे सभी परिवर्तन, भारतीय कृषि के लिए चिंता का विषय है।

जलवायु परिवर्तन के कारण

जलवायु परिवर्तन मुख्य रूप से ग्रीन हाउस गैसों के वातावरण में उत्सर्जन से हो रहा है। ग्रीन हाउस गैसों में कार्बन डाइऑक्साइड का योगदान लगभग 49 प्रतिशत, मेथेन का 18 प्रतिशत, नाइट्रस ऑक्साइड का 6 प्रतिशत तथा अन्य गैसों जैसे ओजोन और कार्बन मोनोऑक्साइड का कुल मिलाकर 13 प्रतिशत योगदान होता है। इन गैसों के उत्सर्जन में लगभग 21.3 प्रतिशत योगदान विद्युत (पावर) संयंत्रों में कोयले के जलाने से होता है, लगभग 16.8 प्रतिशत वाहनों से निकले धुएं से, लगभग 12.5 प्रतिशत उर्वरक एवं सीमेंट के करखानों के धुएं से, लगभग 10 प्रतिशत धान के खेत में जीवांश के सड़ने तथा भेड़ बकरियों तथा दुधारू जानवरों से तथा शेष 25.4 प्रतिशत अन्य स्रोतों का योगदान होता है। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन की मात्रा सामान्यतः आर्थिक विकासदर तथा ऊर्जा की जरूरतों से जुड़ी होती है। देश का बढ़ता औद्योगीकरण उसको बढ़ावा

देता है। इस समय अपने देश के विकास के लिए ऊर्जा की बढ़ती जरूरतें, अधिकतर कोयले एवं खनिज तेल द्वारा पूरी होती है।

भारत में कृषि क्षेत्र से ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन मुख्यतः धान की खेती, जुगाली करने वाले पशुओं में आंत्र किण्वन, खाद एवं उर्वरक के प्रयोग, कृषि मृदा एवं फसल अवशिष्टों के जलाने से होता है। यह उत्सर्जन मुख्यतः धान के खेतों से मेथेन तथा जुगाली करने वाले पशुओं के आंत्र किण्वन एवं कृषि मृदा में खाद एवं उर्वरक के प्रयोग से नाइट्रस ऑक्साइड के रूप में होता है। आंकड़ो के अनुसार, देश में लगभग 600–700 मिलियन टन अपशिष्ट कृषि पदार्थों का उत्पादन होता है, जिसमें से लगभग 272 मिलियन टन फसल अवशेषों से आता है इसमें मुख्य रूप से धान का पुआल एवं गेहूं की जड़े होती हैं। किसान प्रायः गेहूं की कटाई के साथ उसके अवशेष तथा धान के पौधे से दाना निकालने के बाद उसके पुआल को खेत में जला देते हैं। कटाई के लिए मशीनों के बढ़ते इस्तेमाल से कृषि अवशेषों को जलाए जाने का प्रचलन भी बढ़ता जा रहा है। इस समय हालात यह है कि देश में प्रतिवर्ष 8–14 करोड़ टन फसल अवशेष जलाए जा रहे हैं। जिन क्षेत्रों में खेती के लिए मशीनों का उपयोग जितना अधिक किया जाता है, वहां इन्हें इतना ही अधिक जलाया जा रहा है। इनको जलाने के कई कारण है जिसमें मुख्य रूप से किसानों के पास पर्याप्त मात्रा में जमीन नहीं होना है। इस कारण किसानों को मजबूरन धान के पुआल को जलाना पड़ता है तथा खेत की सफाई करके इसी खेत में दूसरी फसल उगानी पड़ती है। पुआल जलाने का दूसरा कारण यह भी है कि इसमे सिलिका की अधिक मात्रा होने के काण पशु इसको खाना पसंद नहीं करते। ऐसा पाया गया है कि एक टन फसल के अवशेष को जलाने से 6 किलोग्राम नाइट्रोजन, 1 किलोग्राम फास्फोरस व 11 किलोग्राम पोटैश भी साथ जलते हैं। 3 किलोग्राम कार्बन कण, 60 किलोग्राम कार्बन मोनोऑक्साइड, 1500 किलोग्राम कार्बन डाईऑक्साइड, 200 किलोग्राम राख और 2 किलोग्राम सल्फर डाईऑक्साइड हवा में फैल जाते हैं। इससे खेतों के मित्र कीट नष्ट हो जाते हैं। मिट्टी में मौजूद पोषक तत्वों को भी नुकसान पहुंचता है। जमीन की ऊपरी परत सख्त हो जाती है। धरती का ताप बढ़ जाता है तथा अगली फसल की उपज में कमी की आशंका बनी रहती है।

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव

देश की कृषि व्यवस्था पूर्णतया वर्षा पर निर्भर है, क्योंकि वर्षा ही सिंचाई के स्रोतों में पानी की उपलब्धता को निर्धारित करती है। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि भारत में 2080 तक सर्दियों में होने वाली वर्षा में 5 से 25 प्रतिशत की कमी हो सकती है, जबकि मानसून की वर्षा में 10 से 155 प्रतिशत तक की वृद्धि हो सकती है। आईपीसीसी की 2007 में प्रकाशित रिपोर्ट के आलोक में यदि ताप 0.14-0.58 सें.ग्रे. प्रति दशक बढ़ता है तो उष्णीय फसलों की पैदावार में 5.11 प्रतिशत कमी होने की संभावना है तथा 2050 तक 11.46 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। आईपीसीसी की चौथी रिपोर्ट में कहा गया है कि फसल की उत्पादकता मध्य व अधिक अक्षांश पर बढ़ सकती है परंतु यदि ताप में 1.3 सें.ग्रे. की वृद्धि होती है तो फसल की उत्पादकता घट सकती है। हाल में आईपीसीसी की रिपोर्ट और कुछ अन्य वैश्विक अध्ययनों में 21वीं शताब्दी के अंत तक ताप वृद्धि से भारत में फसल उत्पादन में 10–40 प्रतिशत की कमी हो सकती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में हुए अध्ययनों में आशंका व्यक्त की गई है कि प्रत्येक 1^0 सें.ग्रे. ताप बढ़ने पर 40–50 लाख टन गेहूं उत्पादन में क्षति हो सकती है। अन्य फसलों में होने वाली क्षति अभी तक अनिश्चित है, परंतु खरीफ की फसलों के लिए अपेक्षाकृत कम नुकसान होने की उम्मीद है। जलवायु परिवर्तनशीलता में वृद्धि

के कारण फसलों के उत्पादन में अनिश्चित उतार–चढ़ाव होगा। सूखा, बाढ़, उष्णकटिबंधीय चक्रवात, भारी वर्षा, गर्म हवाएं फसल उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। इस घटनाओं में अनुमानित वृद्धि से फसल उत्पादन में और अधिक अस्थिरता आएगी। हिमालय में हिमनदों के पिघलने से गंगा के मैदानी क्षेत्रों में सिंचाई जल की उपलब्धता प्रभावित होगी, जिसका सीधा प्रभाव फसल उत्पादन पर पड़ेगा। ऐसा अनुमान है कि भविष्य में बढ़ता हुआ वायुमंडलीय ताप भी उर्वरकों की कार्य कुशलता को प्रभावित करेगा, जिससे भविष्य में खाद्य आपूर्ति के लिए अधिक उर्वरकों की आवश्यकता होगी। उर्वरकों का अधिक उपयोग ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को बढ़ाएगी। मानसून के समय पर नहीं आने तथा जल्दी खत्म होने की वजह से फसलों के बुआई की तिथियाँ बदल रही हैं। कम नमी के कारण पौधों को वढ़वार ठीक नहीं होती, बालियों में दाना अच्छी तरह नहीं आता, अंततः फसल की कुल पैदावार गिर रही है। वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा की अधिकता के कारण कुछ नए कीट, पादप रोग तथा खरपतवारों की अधिकता देखी जा रही है। ताप एवं वर्षा में बदलाव के कारण अनाज, फल, औषधीय एवं सुगंधित पौधों की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ सकता है।

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव से बचाव के उपाय

जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन के लिए भूमि के उपयोग और प्रबंधन में परिवर्तन आवश्यक है। फसलों की बुआई की तिथि एवं फसल प्रभेदों में बदलाव, कुछ हद तक जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में मदद कर सकता है। उदाहरण के रूप में, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के एक अध्ययन के अनुसार यदि एक बड़े प्रतिशत में किसान गेहूं की बुआई समय पर व बेहतर अनुकूलित किस्मों को अपनाये तो भविष्य में होने वाले गेहूं की उत्पादन में कमी को 40–50 लाख टन से 10–20 लाख टन तक कम किया जा सकता है। बदलते मौसम के अनुकूल वैकल्पिक फसलों व अच्छी किस्मों के चयन से जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सकता है। अनियमित व उच्च ताप सहन करने वाली फसलों एवं उनकी प्रजातियों को प्राथमिकता के आधार पर विकसित करने की आवश्यकता है। संसाधन संरक्षण तकनीकों का प्रयोग जैसे जमीन की सतह पर बुआई या शून्य जुताई के साथ बुआई, मिट्टी से कार्बन की अवशोषण की प्रक्रिया द्वारा न केवल वातावरण में मिट्टी से कार्बन की मुक्ति सीमित होती है, बल्कि वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड की कमी करके आंशिक रूप से प्रतिकूल जलवायु का सामना करने में मदद करते हैं तथा बेहतर उपज प्रदान करते हैं या उपज स्थिर करने में मदद करते हैं। शून्य जुताई तकनीक के कारण धान व गेहूं की खेती में पानी की मांग में कमी देखी गई है तथा फसल उत्पादन लागत 10 प्रतिशत कम हो जाती है। साथ ही इसमें एक असाधारण क्षमता यह भी है कि इससे ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि नहीं होती और मिट्टी में जैविक पदार्थों में बढ़ोतरी होती है। उसी तरह उठी हुई क्यारी (रेज बेड) में बुआई करना एक अच्छी संरक्षण तकनीक साबित हुई है, इससे पानी के उपयोग की क्षमता बढ़ जाती है, जलभराव कम होता है तथा खरपतवार कम आते हैं। इसी प्रकार समेकित पोषक तत्व प्रबंधन और स्थल विशिष्ट (साइट–स्पेसीफिक) पोषक प्रबंधन से भी जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने की अच्छी संभावना है। यदि उर्वरकों का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से और जगह के अनुसार सही मात्रा में किया जाए तो इससे दोहरा लाभ होता है। एक तो ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी आती है और दूसरा बेहतर उपज प्राप्त होती है। धान के खेतों में समुचित जल और उर्वरक प्रबंधन, ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने में मदद करता है। ग्रीन हाउस गैसों में कमी के लिए नाइट्रीकरण निरोधकों का उपयोग, जैसे नीम लेपित यूरिया एवं उर्वरकों के छिड़काव के तरीकों पर

अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। खेत की मेड़बंदी कर और तालाबों का जीर्णोधार कर वर्षा जल को तालाबों में संचित कर गिरते भूमि जल स्तर को कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त टपक एवं स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति को अपनाने की आवश्यकता है इससे कम पानी में अधिक फसल क्षेत्र की सिंचाई करने में मदद मिलेगी तथा साथ–ही–साथ पानी की ही हो रही बर्बादी को भी रोका जा सकता है। फसल अवशेष एवं कल–कारखानों के अपशिष्ट उत्पाद को जलाने तथा जहां–तहां फेंकने के बजाय इसको सही तरीके से खेत में उपयोग करने से जमीन की उर्वराशक्ति में वृद्धि होगी तथा वायुमंडल में होने वाली ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी आएगी। बीज को बुआई से पूर्व फफूंद नाशक रासायनों से उपचारित करने से फसल में रोगों का प्रकोप कम कम होता है जिससे बाद की अवस्था में रसायनों के प्रयोग की मात्रा में कमी आती है जो वायुमंडलीय में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करता है। एकल फसल की जगह विविध कृषि व्यवस्था को अपनाना अधिक श्रेयस्कर होगा। बागवानी और कृषि वानिकी को और अधिक प्रोत्साहित करने की जरूरत है। इसी तरह फसलों की खेती के साथ–साथ पशुपालन, मुर्गीपालन और मछली पालन अपनाकर भी जलवायु परिवर्तन से होने वाले नुकसानों को कम किया जा सकता है।

ooo

9

जामुन : सेहत के लिए लाभकारी फल

डॉ. आर एस सेंगर एवं अमित कुमार

भारत फलों की विविधता की दृष्टि से अनुपम देश है। यहां हर मौसम में स्वादिष्ट व गुणों से भरपूर फल उपलब्ध हो जाते हैं। प्रकृति की ओर से जामुन एक अनमोल उपहार है। जामुन का वैज्ञानिक नाम *सायजीजियम कुगिनी* है। यह एक सदाबहार वृक्ष है जिसके फल बैंगनी रंग के होते हैं। यह वृक्ष भारत एवं दक्षिण एशिया के अन्य देशों एवं इंडोनेशिया आदि में पाया जाता है। बारिश का मौसम शुरू होते ही जामुन का फल दिखाई देने लगता है। इसके वृक्ष संपूर्ण भारत में आसानी से पाये जाते हैं, लेकिन अब इसके वृक्षों की संख्या तेजी से कम हो रही है। शुष्क स्थानों पर इसका वृक्ष नहीं उगता है। इसे विभिन्न घरेलू नामों जामुन, राजमन, काला जामुन, जमाली, ब्लैकबरी आदि के नाम से जाना जाता है। प्रकृति में यह अम्लीय और कसैला होता है और स्वाद में मीठा होता है। अम्लीय प्रकृति के कारण सामान्यतः इसे नमक के साथ खाया जाता है। स्वादिष्ट होने के साथ–साथ यह अनेक रोगों की अचूक दवा भी है। इसकी तीन जातियां होती है। एक जाति नदी के तटों पर होती है जिसके पत्ते कनेर के पत्तों के समान और फल बहुत छोटे होते हैं। दूसरी जाति के पत्ते आम के पत्तों के समान और फल मध्यम और कुछ बड़े कद के होते हैं। इन्हें मध्यम कोटि के कद वाले कह सकते हैं, इस जाति को जामुन कहते हैं। तीसरी जाति के वृक्ष बहुत ऊँचे फैले हुए होते हैं। इसके पत्ते पीपल के पत्तों के समान बड़े चिकने होते हैं और ये चमकदार भी होते हैं। इसके फल 2 से 2.5 इंच तक लंबे और 1 से 1.5 इंच तक मोटे होते हैं। इस जाति को राज जामुन कहते हैं। हरियाणा प्रांत में राय जामुन के नाम से प्रसिद्ध है। इन तीनों जातियों के गुणधर्म समान ही है किंतु औषधियों में राज जामुन ही अधिक गुण वाली मानी जाती है। इसलिए इसका विशेष प्रयोग होता है।

स्वामी ओमनंद सरस्वती के अनुसार, जामुन को संस्कृत में जम्बू कहते हैं। यह आर्यावर्त देश भी जम्बू द्वीप का ही भाग है। इसके जम्बू द्वीप नामकरण में यह भी एक कारण हो सकता है कि इसी महाद्वीप में जामुन के पेड़ मिलते हैं। विभिन्न रोगों में जामुन के लाभप्रद गुणों का वर्णन निम्नलिखित में किया गया है। यथा–

जम्बूवृक्षस्तु तुवसें ग्राही मधुपाचकः
मलस्तंभकरो रूक्षो रूचिकृत्पित्तदाहहा
अम्लः कंठ्यः कृमिश्वासशोशातीसारकासहा
रक्तदोश कफ चैत व्रण चैत विनाशयेत्
रूच्य रूक्ष ग्राहक व लेखन कंठूदूशकम्
मलस्तंभकर वातकारक कफपित्तनुत्
आध्मानकारक प्रोक्त पूर्ववैद्यैर्मनीशिभिः

इस श्लोक का अर्थ यह है कि जामुन की छाल कसैली, मलरोधक, मधुर, पाचक, मलस्तंभक, रूक्ष, रूचिकारक तथा पित्त और दाह को दूर करती है। गले को हितकारी तथा कृमि, श्वास, दस्त, खासी, रक्तदोष, कफ और व्रण का नाश करती है। इसके फल कषैले, मधुर, शीतल, रूचिकारक, रूखे, मलरोधक, कंठदूषक, मलस्तंभक, कफपित्त नाशक है। अतः कहने का यह मतलब है कि जामुन ज्यादातर रोग से मुक्ति दिलाता है।

जर्मन वैज्ञानिकों ने जामुन पर एक शोध किया। अपनी शोध रिपोर्ट में उन्होंने लिखा है कि जामुन की पत्तियां महिला सेक्स हार्मोन प्रॉजेस्ट्रॉन के स्राव में वृद्धि कर उसे संतुलित रखती है और विटामिन 'ई' के आत्मसात्करण क्रिया में वृद्धि करती है। आयुर्वेद के प्रमुख आचार्य चरक द्वारा सुप्रसिद्ध ग्रंथ *चरक संहिता* में वर्णित औषधीय योग पुष्यानुग चूर्ण में भी जामुन की गुठली मिलाए जाने का विधान है। इस संहिता के अनुसार जामुन की छाल, फल, पत्ते, जड़ आदि सभी घटक आयुर्वेदिक औषधियाँ बनाने में काम आते हैं। जामुन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा कैल्सियम भी अधिक मात्रा में पाया जाता है।

जामुन की प्रजतियां

जामुन की पहली प्रजाति की पत्तियां आम के पत्तों की तरह तथा फल मध्यम आकार के होते हैं। दूसरी प्रजाति जल जामुन के पत्ते कनेर की पत्तियों की तरह तथा फल मध्यम आकार के होते हैं। तीसरी प्रजाति राय जामुन के पत्ते पीपल के पत्तों की तरह बड़े, चिकने व चमकदार होते हैं तथा फल 2 से 2.5 इंच लंबे व 1 से 2 इंच तक मोटे होते हैं। इनके वृक्ष बहुत ऊँचे व फैले हुए होते हैं।

किस्में

व्यावसायिक तौर पर उगाने के लिए जामुन की कोई सुधरी हुइ किस्मे तो नहीं है परंतु उत्तर भारत में उगाई जाने वाली किस्म राय जामुन है। यह बड़े फलों वाली व गहरे जामुन रंग वाले फल की ही किस्म है। इसी तरह अन्य राज्यों में उगने वाली किस्में भी हैं जिनमें बड़े आकार के फल वाली गुजराती किस्म 'पारस' तथा वाराणसी की बिना गुठली वाली किस्म इत्यादि है।

जामुन के औषधीय गुण

1. मधुमेह (डायबिटीज) के उपचार में – मधुमेह रोगियों की संख्या दुनिया में तेजी से बढ़ रही है, या यू कहिए कि यह समस्या अब आम हो चली है लेकिन जामुन का सेवन करके इस रोग से बचाव संभव है। यह सच है कि भारत का स्वदेशी पेड़ जामुन मधुमेह रोग के उपचार की ताकत रखता है। जामुन की गुठली चिकित्सीय दृष्टि से अत्यंत उपयोगी मानी गई है। इसकी गुठली के अंदर की गिरी में जंबोलीन नामक ग्लूकोसाइड पाया जाता है। यह स्टार्च को शर्करा में परिवर्तित होने से रोकता है। जामुन की गुठली को पीसकर इस चूर्ण को नियमित रूप से कुछ दिनों तक दिन में दो बार पानी के साथ 2–2 ग्राम लेने से रक्त में शर्करा स्तर सामान्य हो जाता है।

2. बवासीर के उपचार में – जामुन बवासीर में भी लाभ पहुंचाता है। जामुन की नरम–नरम कोंपलों (पत्तों) का 20 ग्राम रस निकालकर थोड़ी मिश्री व खांड मिलाकर पीने से खूनी बवासीर का बहता हुआ खून बंद हो जाता है। इसके शरबत से खूनी बवासीर और खूनी दस्तों में लाभ होता है। जामुन की कोमल कोंपलों के 10 ग्राम रस को गाय के 250 ग्राम दूध के साथ मिलाकर लेने से 8 दिन में बवासीर में आने वाले रक्त बंद हो जाता है।

3. पेट के उपचार में – जामुन के कच्चे फलों का सिरका बनाकर पीने से पेट के रोग ठीक होते हैं। अगर भूख कम लगती हो और कब्ज की शिकायत रहती हो तो इस सिरके को ताजे पानी के साथ बराबर मात्रा में मिलाकर सुबह और रात्रि सोते वक्त एक हफ्ते तक नियमित रूप से सेवन करने से कब्ज दूर होता है और भूख बढ़ती है।

4. विषैले जंतुओं के काटने के उपचार में – विषैले जंतुओं के काटने पर जामुन की पत्तियों का रस पिलाना चाहिए। काटे गए स्थान पर इसकी ताजी पत्तियों की पुल्टिस बांधने से घाव स्वच्छ होकर ठीक होने लगता है क्योंकि जामुन के चिकने पत्तों में नमी सोखने की अद्भुत क्षमता होती है।

5. उल्टी दस्तों के उपचार में – जामुन के एक किलोग्राम ताजे फलों का रस निकालकर ढाई किलोग्राम चीनी मिलाकर शरबत जैसी चाशनी बना लें। इसे एक ढक्कनदार साफ बोतल में भरकर रख लें। जब कभी उल्टी दस्त या हैजा जैसी बीमारी की शिकायत हो, तब दो चम्मच शरबत और एक चम्मच अमृतधारा मिलाकर पिलाने से तुरंत राहत मिल जाती है।

6. गठिया के उपचार में – गठिया के उपचार में भी जामुन बहुत उपयोगी है। इसकी छाल को खूब उबालकर बचे हुए घोल का लेप घुटनों पर लगाने से गठिया में आराम मिलता है।

7. मुहांसों के उपचार में – चेहरे पर मुहासे व फुंसियां निकलने पर जामुन की गुठली पानी में घिसकर मुंह पर लेप करने से बड़ा लाभ होता है। परंतु गरम व खट्टे पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

8. पथरी के उपचार में – पथरी की शिकायत होने पर जामुन की गुठली के चूर्ण का प्रयोग दही के साथ करें। कुछ ही दिनों में पथरी गल कर निकल जाएगी। यदि छोटे बच्चों को बिस्तर में पेशाब करने की आदत हो तो उन्हें चार–पांच दिनों तक जामुन की गुठली का चूर्ण आधा–आधा चम्मच दो बार पानी के साथ दें कुछ ही दिनों में लाभ होगा।

9. हीमोग्लोबिन के उपचार में – जामुन के रस के आंवले के रस में समान मात्रा में मिलाकर पीने से शरीर में हिमोग्लोबिन का स्तर बढ़ने लगता है।

जामुन स्वाद में खट्टा मीठा होने के साथ–साथ स्वास्थ्य के लिए बेहद फायदेमंद है। इसमें पाया जाने वाला तांबा शीघ्र अवशोषित होकर रक्त निर्माण में भाग लेता है। यह त्वचा को रंग प्रदान करने वाली वर्णक मेलानिन कोशिका को सक्रिय करता है, अतः यह रक्तहीनता तथा ल्यूकोडर्मा की उत्तम औषधि है। इतना ध्यान रहे कि अधिक मात्रा में जामुन खाने से शरीर में जकड़न एवं बुखार होने की संभावना भी रहती है। इसे कभी खाली पेट नहीं खाना चाहिए और न ही इसके खाने के बाद दूध पीना चाहिए।

एक मान्यता के अनुसार, जामुन का फल गर्भवती महिलाओं को खिलाने से उनके होने वाले बच्चे के होंठ सुंदर होते हैं। जामुन के बीज से बने पाउडर को आम के बीज के पाउडर के साथ मिलाकर सेवन करने से डायरिया में काफी राहत मिलती है। कुल मिलाकर जामुन में एक से बढ़कर एक गुण विद्यमान हैं। अतः कहना चाहिए कि जामुन खाइए और रोगों को दूर भगाइए।

ooo

10

घातक कवक विष : ऐफ्लाटॉक्सिन

डॉ. दीपक कोहली

कवक द्वारा खाद्य विषाक्ता (food poisoning) की कई घटनाएं संपूर्ण विश्व में घटित हो चुकी हैं। यह कवक अपनी जैविक क्रियाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के कवक विष उत्पन्न करते हैं, जिन्हें 'माइकोटॉक्सिन' कहते हैं। इन माइकोटॉक्सिनों में 'ऐफ्लाटॉक्सिन' सबसे तीव्र जहर है, जिससे फेफड़े, वृक्क, आंत आदि में कैंसर जैसे भयानक एवं जानलेवा रोग हो सकते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने 30 पी.पी.बी. (भाग प्रति पर बिलियन) से अधिक मात्रा में ऐफ्लाटॉक्सिन की शरीर में उपस्थिति को विषाक्त घोषित किया है।

'माइकोटॉक्सिनों' की उत्पत्ति एवं इतिहास करीब 5000 वर्ष पूर्व का है। विकासशील एवं कम विकसित देशों में विभिन्न प्रकार के खाद्यन्नों पर विभिन्न प्रकार कवक विष ज्ञात हो चुके हैं। भारत एवं अन्य विकासशील देशों में कवक विषों से खाद्य विषाक्तता की कई दुर्घटनाएं हो चुकी हैं, जिसमें जानवरों एवं मुनष्यों की मृत्यु भी हुई हैं। इन कवक विषों को क्रमशः 'जूटॉक्सिक' (जो जानवरों हेतु विषाक्त होते हैं) व 'फॉइटोटॉक्सिक' (जो पादपों हेतु विषाक्त होते हैं) कहा जाता है।

इन माइकोटॉक्सिनों में ऐफ्लाटॉक्सिन नामक कवक विष सबसे तीव्र एवं विषैला है। यह 'एसपरजिलस' (Aspergillus) नामक कवक के द्वारा मुख्यतः उत्पन्न होता है। मध्यकाल में यूरोप में 'सेंट ऐंथोनी फायर' या 'अरगोटिज्म' के नाम से फैला रोग, मुख्यतः 'ऐफ्लाटॉक्सिन' के कारण ही हुआ था, जिसमें 'एसपरजिलस फ्लेक्स' नामक कवक से संक्रमित खाद्य पदार्थों को खाने से रूस में वर्ष 1940 में घोड़े एवं मनुष्य बीमार हुए। कुछ घोड़े जो गंभीर रूप से इसकी चपेट में आ गए थे उनकी अंततः मृत्यु हो गई। इसी प्रकार जापान में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् 'पेनिसिलियम' नामक कवक से संक्रमित खाद्य से सैकड़ों लोग बीमार हो गए थे। विभिन्न प्रकार के कवक विषों में से सर्वप्रथम खोज 'ऐफ्लाटॉक्सिन' की ही हुई थी, जो मुख्यतः 'एसपरजिलस फ्लेक्स' तथा 'एसपरजिलस पेरासाइटिकस' से उत्पन्न होता है। अब तक 18 से अधिक ऐफ्लाटॉक्सिनों की खोज हो चुकी है। इनमें से मुख्यतः 04 सामान्यतः खाद्य पदार्थों में पाए जाते हैं– ऐफ्लाटॉक्सिन B_1, B_2, G_1 एवं G_2 इसके अतिरिक्त, ऐफ्लाटॉक्सिन M_1 व M_2 जानवरों के दूध में तथा ऐफ्लाटॉक्सिन P_1 (यह ऐफ्लाटॉक्सिन B_1 से संक्रमित खाद्य ग्रहण किए हुए) बंदर के मूत्र में पाया गया।

इसके अतिरिक्त, ऐफ्लाटॉक्सिन GM_1, B_3, G_3, Bza, Gza एवं B_3 आदि भी ज्ञात हो चुके हैं। ऐफ्लाटॉक्सिन B_1, B_2, G_1, व G_2 उबालने पर भी नष्ट नहीं होते हैं तथा एक बार खाद्य पदार्थों में प्रवेश करने पर इस खाद्य को नष्ट करने के अतिरिक्त कोई उपाय शेष नहीं रहता है। ऐफ्लाटॉक्सिन B_1 मानव जाति हेतु घातक विष है। इसके प्रभाव से फेफड़ों, वृक्क, आंत्र एवं यकृत (लीवर) में कैंसर ज्ञात हो चुके हैं। ऐफ्लाटॉक्सिन के द्वारा संक्रमित खाद्य पदार्थों से इन अंगों में विकृतियां भी उत्पन्न हो जाती हैं।

ऐफ्लाटॉक्सिन संक्रमण की कई घटनाएं विकासशील एवं कम विकसित देशों में देखी गई हैं, जिनमें से कई जानवरों एवं मनुष्यों की मृत्यु भी हुई है। राजस्थान में

भी अक्तूबर 1974 में अनियमित वर्षा होने से ग्रामीण इलाकों के गरीब भील जाति के लोगों को जीवन यापन हेतु कवक संक्रमित मक्का को वैकल्पिक खाद्य के रूप में खाना पड़ा, जिससे कई लोग खाद्य विषाक्तता के कारण मर गए। अनुसंधान द्वारा इसका कारण एसपरलिस फ्लेक्स द्वारा उत्पन्न ऐफ्लाटॉक्सिन नामक कवक विष पाया गया जिससे जठरांत्र रक्तस्राव (gastro intenstine haemorrhage) के कारण मनुष्यों की मृत्यु हुई।

विभिन्न देशों में ऐफ्लाटॉक्सिन की सह्यता सीमा (तालिका–ए) ज्ञात की जा चुकी है। वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा ज्ञात हो चुका है कि विभिन्न प्रकार के माइकोटॉक्सिनों की मात्रा यदि धीरे–धीरे शरीर में प्रवेश करती रहे तो एक नियत मात्रा से अधिक होने पर मनुष्य/जानवर की मृत्यु भी हो सकती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने 30 पी.पी.बी. से अधिक मात्रा में ऐफ्लाटॉक्सिन की शरीर में उपस्थिति को विषैला माना है जिससे मानव की मृत्यु भी हो सकती है, इसे 'घातक डोज' कहते हैं।

ऐफ्लाटॉक्सिन उत्पन्न करने वाले एक कवक 'एसपरजिलस फ्लेक्स' एवं 'एसपरजिलस पेरासाइटिकस' आदि के बीजाणु वायु में मुक्त रूप से बिखरे रहते हैं तथा किसी भी प्रकार के खाद्य को संक्रमित कर उनमें खाद्य विषाक्तता उत्पन्न कर सकते हैं। ग्रामीण इलाकों में जहां खाद्य संग्रहण की वैज्ञानिक विधियों का अभाव होता है तथा गरीब लोगों में जिनके लिए पौष्टिक खाद्य दुष्कर होता है, इस विष कवक से ग्रसित होने के ज्यादा आसार होते हैं।

संक्षेप में, किसी भी प्रकार की कवक से ग्रस्त वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए तथा उन्हें नष्ट कर देना चाहिए, जिससे जानवरों आदि में खाद्य विषाक्तता न होने पाएं। ऐफ्लाटॉक्सिन नामक तीव्र जहर से बचने का एकमात्र उपाय उससे सुरक्षा ही है। एक बार इस विष के खाद्य पदार्थों में बन जाने पर उसे नष्ट करना ही एकमात्र उपाय है। इस बारे में ग्रामीण एवं गरीब वर्ग के लोगों को जानकारी देने एवं उससे बचाव के तरीके बताने हेतु प्रयास करने की भी आवश्यकता है। खाद्य संग्रहण के वैज्ञानिक तरीके अपनाकर एवं संक्रमित भोजन को नष्ट करना ही ऐफ्लाटॉक्सिन से बचने का साधन है।

तालिक–ए

विभिन्न देशों में ऐफ्लाटॉक्सिन की सह्यता मात्रा

क्र.सं.	देश	खाद्य का प्रकार	सह्यता मात्रा (पी.पी.बी. में)
1.	जापान	सभी खाद्य पदार्थों में	10
2.	संयुक्त राज्य अमेरिका	1. मटर तथा सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं में 2. शेष सभी खाद्य पदार्थों में	15 20
3.	कनाडा	फलों एवं उनकी उपजों में	15-20
4.	डेनमार्क	मटर कुल, अन्य फलों तथा खाद्य पदार्थों में	5-10
5.	इटली	मटर कुल के एवं अन्य फलों में (आयतित)	50
6.	फ्रांस	सभी खाद्य पदार्थों में	20-50

पी.पी.बी. – भाग प्रति बिलियन

○○○

11

वेदों में निहित गणित की प्रासंगिकता

डॉ. दुर्गा दत्त ओझा

समस्त विज्ञान का मूल ही गणित है। इसका उपयोग प्रत्येक कला एवं विज्ञान में हुआ है। वस्तुतः विश्व की प्रत्येक वस्तु किसी नियम से बद्ध है, उसमें कोई क्रम है। उस नियम एवं क्रम का ज्ञान गणित के अंतर्गत आता है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में गति है और गति का संबंध गणना से है तथा यह गणना गणित का विषय है। गति की निरंतरता का नाम समय है और गति का चतुर्दिक प्रसार ही स्थान है। इनके ज्ञान के लिए गणित की आवश्यकता होती है। गणित के द्वारा गति का आकलन किया जाता है, अतः गणित ही विज्ञान की आधारशिला है। स्वयं प्रकृति भी गणितमय है। आकाश में जितने ही पिंड है, जिनमें हमारी पृथ्वी भी है सदैव बिना टकराए घूमते रहते हैं। नियमानुसार हमारा जीवन भी गणित पर आधारित है।

छंदोग्य उपनिषद् में सर्वप्रथम गणितशास्त्र का राशिविद्या और ज्योतिष का उल्लेख मिलता है। प्राचीन बौद्ध साहित्य में तीन प्रकार के गणित का उल्लेख मिलता है, यथा– मुद्रा (उंगलियों पर गिनना) गणना (सामान्य गणित, मौखिक गणना) एवं संख्यान (उच्च गणित)। इसी प्रकार अज्ञात राशि से संबंध रखने वाला बीजगणित (Algebra) कहलाया तथा क्षेत्रगणित को ज्यामिति (Geometry) कहा गया। इस प्रकार का पृथक्करण सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त ने किया। उन्होंने *बाह्यस्फुट सिद्धांत ग्रंथ* में बीजगणित से संबंद्ध अध्याय को 'कुहकाध्याय' कहा है।

वस्तुतः अंकगणित विज्ञान के मूल में अंकों के उद्भव की कहानी है। हमारे वाङ्मय में अंकों को प्रकट करने के लिए दो प्रणालियां थी– प्रथम को अक्षरांक शब्दांक तथा द्वितीय को दशमलवांक पद्धति कहते हैं। भारत में वेद को आधार मानकर कई गणितज्ञ मनीषी हुए हैं, यथा– आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, महावीर, भास्कर, वराहमिहिर आदि।

अक्षरांक और शब्दांक

इसमें हर अंक के लिए अक्षर नियुक्त थे, जैसे– 1 के लिए 'क' तथा 0 के लिए 'न' अक्षर का प्रयोग। यह प्रयोग आर्यभट्ट के ज्योतिष ग्रंथों में किया गया है। इसी पद्धति के समांतर है शब्द–प्रकृति।

यजुर्वेद, तैंतिरीय संहिता, मैत्रायणी और काठक संहिताओं में 1 से परार्ध तक की संख्याओं के नाम मिलते हैं। इनमें से प्रत्येक अगली संख्या 10 गुनी है। ये नाम हैं–

एक (1), दश (10), शत (100), सहस्र (1000), अयुत (10 हजार), नियुत (1 लाख), प्रयुत (10 लाख), अर्बुद (1 करोड़), न्यर्बुद (10 करोड़), समुद्र (1 अरब), मध्य (10 अरब), अन्त (1 खरब), परार्ध (10 खरब)। ऋग्वेद में एक, दश, शत, सहस्र, अयुत तक ही संख्या शब्द मिलते हैं। अथर्ववेद में शत, सहस्र, अयुत और न्यर्बुद तक की संख्याएं दी हैं।

यजुर्वेद (17.2) के भाष्य में महीधर ने एक से परार्ध तक 18 संख्या–संज्ञाओं का उल्लेख किया है तथा कहा है कि न्यर्बुद के बाद खर्व, निखर्व, महापद्म और शंकु संज्ञाओं का भी परिगणन समझना चाहिए। ये 18 संख्या–संज्ञाएं निम्नवत हैं–

एक (1)	1
दश (10)	1^1

शत (100)	10^2
सहस्र (1000)	10^3
अयुत (10 हजार)	10^4
नियुत (लक्ष) (1 लाख)	10^5
प्रयुत (10 लाख)	10^6
कोटि (1 करोड़)	10^7
अर्बुद (10 करोड़)	10^8
न्यर्बुद (अब्ज) (1 अरब)	10^9
खर्व (10 अरब)	10^{10}
निखर्व (1 खराब)	10^{11}
महापद्म (10 खराब)	10^{12}
शंकु (1 नील)	10^{13}
समुद्र (जलधि) (10 नील)	10^{14}
मध्य (अन्त्य) (100 नील)	10^{15}
अन्त (अन्त्य) (1 हजार नील)	10^{16}
परार्ध (10 हजार नील)	10^{17}

दशमलवांक पद्धति

भारतीय अंकों में जिह्वा मूलीय तथा उपध्मानीय अक्षरों का होना इस बात का प्रमाण है कि उनकी उत्पत्ति वैदिक काल में ही हो चुकी थीं। एक शैली में 1 से 9 तक के ही अंक थे और दहाई से गणना करने का नियम था। दूसरी शैली में शून्य की योजना थी और दहाई से गिनते थे। योगसूत्र के भाष्य में व्यास दशगुणोत्तर अंकक्रम अपनाया गया है। संख्याओं का नामकरण भी विशुद्ध वैज्ञानिक है। अपनी निरुक्त पुस्तक में 3/2/9 में यास्काचार्य संग्रामवाची 46 पर्यायों का उल्लेख करते हैं तथा उदाहरण रूप उद्धृत करते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति का काल बताने के लिए अथर्ववेद में निम्न मंत्र है (8/2/2)।

शतं ते अयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृष्मः।
इंद्राग्नी विश्वे देवास् तेत्नुमन्यामिह नोऽभावाः।।

शतम् (सौ)	000
अयुतम् (दस हजार)	00000
द्वे	20000000
त्रीणि	300000000
योग	4,32,0000000

अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष।

शून्य का आविष्कार

आर्ष पद्धति में विभिन्न अंक थे– 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, और 9। स्थानमूलक पद्धति में दाई ओर से बाई ओर चलते हुए प्रथम स्थान इकाई का, द्वितीय स्थान दहाई का, तीसरा स्थान सैकड़े का, चौथा स्थान हजार का, पांचवा स्थान दस हजार का, छठा स्थान लाख आदि और इस प्रकार विभिन्न स्थानों का मान अपने से पहले स्थान के मान का दस गुणा करने से प्राप्त हो जाता है। परंतु इस प्रकार संख्याओं को लिखना एवं समझना तथा उनके साथ विभिन्न परिकलन करना अत्यंत दुष्कर कार्य था। इस प्रकार लिखे गए सौ दो को तीन हजार बीस भी पढ़ा जा सकता है। इस प्रकार इस समस्या का समाधान भारतीय वैदिक ऋषियों की आश्चर्यजनक खोज 'शून्य' ने किया।

शून्य का संस्कृत में अर्थ है– 'रव' अर्थात् 'आकाश' अथवा जो कुछ भी नहीं है खालीपन कहा गया है– 'यदच्छा विन्यासे शून्यं' अर्थात् अनजान एवं अज्ञात अंक के स्थान पर 'शून्य' का प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः 'शून्य' शब्द का प्रयोग, 'यावद् तावद्' अर्थात् जो है वहीं के अर्थ में होता है। शून्य विश्व के लिए एक पहेली है। इसका तात्विक विवेचन आज तक पूर्ण नहीं हुआ है। यह सृष्टि का आदि और अंत है। इससे ही सृष्टि का प्रारंभ होता है और इसमें ही लय होता है।

ओइम एवं ब्रह्मा (यजुर्वेद 40.17)

अर्थात् ब्रह्म आकाशवत् शून्य है।

महावीर और भास्कर के गणित में शून्य तथा भास्कर के पहले श्रीधर ने शून्य का वर्णन किया है। भारत में शून्य की जो आकृति अपनाई गई वही संसार के अधिकांश देशों में प्रचलित हुई। अरब देशों ने शून्य का 'सिफर' नाम दिया तथा संभवतः इसी से अंग्रेजी शब्द 'साईफर' बना और अंग्रेजी में प्रयुक्त 'जीरो' शब्द की उत्पत्ति भी लैटिन शब्द 'जेफिराम' से हुई। शून्य के विभिन्न भाषाओं में नाम निम्नवत् है–

संस्कृत	फ्रेंच	अरबी	अंग्रेजी	स्पेनिश
शून्य	सिफ्रे	सिफ्र	साइफर	सिफ्रा
शून्य	जीरो	सिफ्र	जीरो	

अरबी का सिफ्र पुरानी फ्रेंच में सिफ्रे हुआ और अंग्रेजी में साइफर। वहीं नई फ्रेंच तथा अंग्रेजी में जीरो हुआ।

शून्य के आविष्कार के अतिरिक्त भारतीय वैदिक गणितज्ञों को 'दशमलव' पद्धति के आविष्कार का भी श्रेय है। जिस प्रकार 'दस' को आधार मान स्थान मूल पद्धति द्वारा 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 और 0, इन दस अंकों के प्रयोग से स्थान बदलकर कोई भी एक से बड़ी संख्या लिखी जा सकती है। उसी प्रकार दशमलव पद्धति द्वारा दशमलव बिंदु लगाकर एक से छोटी प्रत्येक संख्या लिखी जा सकती है जिसका उल्लेख ऋग्वेद (10/94/7) में भी मिलता है।

दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो, दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेकः
दशाभीशूभ्यो अर्चतारेभ्ये, दशधुरो दशयुक्ता वृहद्भ्यः
ऋग्वेद (10/94/7)

यह दस से गुणित और विभाजित करने की दशमलव प्रणाली विश्व को भारत की ही देन है। खलीफा–वलीद अलवेरुनी के अनुसार यह प्रणाली के बाद 773 में अरब गई। विश्वकोश के भाग 17 पृष्ठ 626 पर उल्लेख है कि अरब से 12वीं शताब्दी में यह पद्धति यूरोप गई और इसे वहां गणित अल्गोरिलस अल्गोरिथम कहा गया जो विदेशी शब्द अल्खारिज़्मी का अक्षरांतर मात्र है।

शून्य का स्वरूप

शून्य का स्वरूप यजुर्वेद के 40.17 मंत्रानुसार ऊँ एवं ब्रह्म से स्पष्ट होता है। यजुर्वेदानुसार शून्य 'रव' अर्थात् ब्रह्म का स्वरूप है। गणित में 'रव' या 'शून्य' उस अनंत, अपरिमित, अपरिमेय या असंख्येयशक्ति (ऊर्जा) का प्रतीक है, जिससे समस्त अंकों और संख्याओं की उत्पति हुई है। मूल ऊर्जा के प्रतीक इस शून्य को विज्ञान, दर्शन तथा अन्य शास्त्रों ने विभिन्न नाम दिए हैं। यह धनात्मक और ऋणात्मक शक्तियों में विभक्त होकर धनात्मक परार्ध एवं ऋणात्मक अवरार्ध को सूचित करतां है। इसके लिए धन या योग (+) और वियोग या ऋण (–) का चिह्न देकर धनात्मक एवं ऋणात्मक बड़ी से बड़ी संख्या को बताया जा सकता है। वस्तुतः यह धनात्मक एवं ऋणात्मक शक्तियों के बीच में विद्यमान एवं अदृश्य शक्ति है, जिसको गणित में शून्य के चिह्न द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। अन्य स्थानों पर शून्य, सैकड़ा, हजार, लाख आदि स्थानमान को सूचित करता है।

शून्य एवं अनंत

यजुर्वेद में शून्य को अनंत एवं अपरिमेय बताया गया है। किसी भी संख्या में शून्य को जोड़े, घटावे या गुणा करें तो उसका मान वही रहता है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। भास्कराचार्य द्वितीय (1150 ई.) ने सर्वप्रथम यह स्पष्ट किया है कि किसी भी संख्या को शून्य से भाग देने पर 'अनंत' संख्या आती है। इस अनंत राशि को ही 'खहर' कहा जाता है। इसका श्लोक निम्नवत् है–

अस्मिन् विकारः खहरे न राशौ, वपि प्रविष्टेष्वपि निः सृतेषु।
बहुष्वीपे स्यादलय सृष्टिकाले, ऽनन्तेच्युते भूतगणेषु यद्वत।

अर्थात् उस भिन्न में जिसके हर में शून्य हो (खहर) चाहे जितना दे या उसमें से चाहे जितना निकाल दें उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। इसी प्रकार जगतों की उत्पति या नाश पर या कितने जीवों के उत्पन्न होने पर या मर जाने पर अनंत और अपरिवर्तनशील ईश्वर में कोई अंतर नहीं पड़ता है। यही भाव निम्न श्लोक में भी मिलता है कि पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर भी पूर्ण ही बचता है, अर्थात् शून्य में से शूय निकाल देने पर भी शून्य (पूर्ण) शेष बचता है। शून्य आकाश के तुल्य एक पूर्ण संख्या है। उसमें से घटाने आदि से कोई अंतर नहीं पड़ता है।

ऊँ पूर्णमदः पूर्णामिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते।।

वैदिक काल में π का मान

वृत्त की परिधि एवं व्यास के अनुपात को यूनानी अक्षर पाई (π) कहा जाता है। वस्तुतः पाई एक ऐसा नियतांक है, जिसके बारे में सदियों से जिज्ञासा रही है,

और अभी तक भी बनी हुई है। कुछेक वर्षों में एक जापानी कंप्यूटर की सहायता से रामानुजम के एक सूत्र का उपयोग करके 20,10,00000 दशमलव तक इसका मान निकाला गया। इसके पूर्व रामानुजम के सूत्रों की सहायता से के.एक्स.एम.पी.–14 कंप्यूटर की सहायता से इसका मान एक करोड़ 70 लाख दशमलव तक दिया जा चुका था।

आर्कमीडिज ने इसका मान 3.412857 तथा 3.140845 के बीच माना। मिश्र में इसका मान 3.00 माना गया था। शल्ल सूत्र में इसका मान 3 तथा 3.1623 के बीच माना गया है। प्राचीन भारत में इसका मान 3 या 3.1672 उल्लेख किया गया है। भास्कराचार्य ने आर्यभट्ट द्वारा लीलावती में बताए गए मान 3.14159 को सही माना, यद्यपि हम आजकल इसके कामचलाऊ मान 22/7 से अपनी गणनाएं करते हैं।

π शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1709 ई. में वृत्त की परिधि एवं व्यास के अनुपात के लिए विलियम जोंस ने प्रयोग किया तथा ल्यूनार्ड आयलर ने 1739 ई. में इसका व्यापक रूप में प्रसार किया था। एडेल्फ स्युलन ने (1540–1660) ने सबसे पहले π का मान 35 दशमलव तक निकाला था, जबकि वैदिक काल में इसका मान 32 दशमलव तक ज्ञात था।

गोपीभाग्यमधुवात – शृंगीशोवाधिसन्धिग।
गल जीवित खातव गलहाला रसंधार।।
कादि नव टादि नव पारिपंचे यधिष्टक एक्षः शून्यम्

अतः π का मान इस प्रकार निम्नवत् है–

3.14592653589793238462643327 92

उपर्युक्त कूट की सहायता से π का मान निकाला जाता है।

रेखागणित

वेदों में रेखागणित संबंधी सामग्री सूत्ररूप में मिलती हैं। इसका विस्तृत विवरण शुल्बसूत्रों में मिलता है। ऋग्वेद के कुछेक मंत्रों में रेखांकित के कुछ शब्द मिलते हैं–

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानम्,
आज्यंकिमासीत् परिधिक आर्स
छन्द किमासित् प्रउगं किमुक्थं
यददेव देवमयजन्त विश्वे। (ऋग्वेद 10.130.3)

इस मंत्र में रेखागणित से संबंद्ध ये शब्द हैं–

प्रमा – नाम, परिमाप
प्रतिमा – नक्शा, रूपरेखा
निदानम् – कारण, मूलसिद्धांत
परिधि – घेरा
छन्द – नापने का साधन, रज्जु आदि

इसी को शुल्ब कहा गया है।

प्रउग – शुल्बसूत्रों में समद्विबाहु त्रिभुज रेखागणित की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण 4 शुल्बसूत्र हैं– बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन एवं मानव शुल्बसूत्र। सारे शुल्बसूत्र ग्रंथ एक प्रकार से रेखागणितीय ग्रंथ हैं। इनमें सामान्य से कठिनतम वेदियों के निर्माण की पूरी विधि वर्णित है। इन शुल्ब सूत्रों के पूर्वोक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि पैथागोरस से पहले ही वैदिककाल में ही यह प्रमेय भारतीय मनीषियों को ज्ञात हो चुका था। अतः यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि वेदों में निहित गणित को आधुनिक पाश्चात्य जगत के वैज्ञानिक भी सहज रूप में स्वीकार करते हैं।

ooo

12

विश्व के भूगोलविदों की संगोष्ठी

जगनारायण

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय के सभागार में विश्वविद्यालय के 'भूगोल विभाग' एवं 'एशियन अरबन रिसर्च एसोसिएशन' के संयुक्त तत्वावधान में 28 दिसंबर से 30 दिसंबर तक '12वीं अंतरराष्ट्रीय नगरीकरण संगोष्ठी' आयोजित हुई।

इस संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए विख्यात भूगोलवेत्ता और प्रयाग विश्वविद्याल के पूर्व कुलपति प्रो. आर पी मिश्रा ने कहा कि– "यूरोप, अमेरिका और एशिया के देशों की नगरीय समस्याएं और परिस्थितियां समान नहीं हैं। एशिया से संबंधित नगरीकरण की स्थिति के अध्ययन के लिए हमें इस महाद्वीप की भौगोलिक वास्तविकता को आधार बनाना चाहिए।"

इस अवसर पर संगोष्ठी में सम्मिलित एशियन अरबनाइजेशन रिसर्च एसोशिएशन के वरिष्ठ सदस्य एवं अमेरिका स्थित शिपेनबर्ग विश्वविद्यालय के भूगोल प्राध्यापक जार्ज पोमेरा ने अपने संबोधन में एशियाई देशों के शहरीकरण संबंधी चुनौतियों को समझने और उसके निराकरण के लिए भारत और चीन से प्राप्त अनुभवों का अधिक–से–अधिक अध्ययन करने पर जोर दिया। एशिया के भावी सुनियोजित शहरीकरण के लिए उन्होंने संगोष्ठी में आए दुनिया भर के प्रतिनिधियों के विचारों और अनुभवों को समझने और साझा कर उस पर आधारित योजनाओं के निर्माण पर भी जोर दिया।

अमेरिका स्थित वेस्टर्न विश्वविद्यालय में भूगोल प्राध्यापक प्रो. देवनाथ मुखर्जी ने कहा कि– "एशिया के दो बड़े देश भारत और चीन में हो रहे शहरी विकास की प्रक्रिया से संबंधित आंकड़ो का बड़े पैमाने पर संकलन और उसका आदान–प्रदान कर उसके आधार पर इस महाद्वीप के शहरी विकास को आगे बढ़ाया जाना चाहिए।"

गोष्ठी में भाग ले रही 'बूडापेस्ट विश्वविद्याल' शहरीकरण संबंधी भूगोल विशेषज्ञ प्रो. लुसियाना ने कहा कि नगरीकरण, गरीबी, स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के बीच सामंजस्य बैठाना आज के भूगोलविदों के लिए एक बड़ी चुनौती है। इस अवसर पर गोष्ठी के संयोजक काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्रो. बी आर के सिन्हा ने कहा कि– "आगे आने वाले दिनों में नगरीकरण, पर्यावरण और विकास की चुनौतियों को समझने के लिए अंतरराष्ट्रीय मंचों पर विकास का आदान–प्रदान आवश्यक है।

तीन दिन की इस संगोष्ठी में लगभग तीन सौ शोध पत्रों के माध्यम से एशिया, अमेरिका, फ्रांस, रोमानिया, नेपाल, भूटान, दक्षिणी अफ्रीका, बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, ईरान, चीन, इटली, हंगरी, रूस, कनाडा से आए हुए अध्येताओं एवं विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए।

30 दिसंबर को गोष्ठी के समापन सत्र के अवसर पर बोलते हुए चर्चित भूगोलविद एवं महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के कुलपति डॉ. पृथ्वीस नाग ने कहा– "अमेरिका एवं यूरोप के अन्य देशों की परिस्थितियों को आधार बनाकर एशियाई देशों के शहरीकरण को समझने का प्रयास उचित नहीं है, क्योंकि एशिया की भौगोलिक, सामाजिक और पर्यावरणीय परिस्थितियां यूरोप और अमेरिका से अलग हैं।" डॉ. नाग ने कहा कि– "हमें एशिया विशेषकर भारत के शहरीकरण के संबंध में आंकड़ों के एकत्रीकरण में भारतीय परिस्थितियों का पूरी तरह ध्यान रखना होगा।"

समापन सत्र में विचार व्यक्त करते हुए नेपाली मूल के अमेरिकी प्रोफेसर डॉ. केशव भट्टराई ने कहा कि– "एशियाई देशों के शहरीकरण की प्रक्रिया को समझने के लिए ग्रामीण विकास, विस्थापन, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का समन्वित अध्ययन एक अनिवार्य पक्ष है। इसके अभाव में सार्थक परिणाम पाना संभव नहीं होगा।" इस अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन सत्र में अपने विचार व्यक्त करते हुए अमेरिकी प्रतिनिधि जार्ज पोमेराय ने कहा कि– "आने वाले दिनों में शहरीकरण की प्रक्रिया और तेज होगी। इसके चलते ऊर्जा, स्वास्थ्य, रोजगार, सृजन और सामाजिक संरचना के नए बिंदुओं का उदय होगा। हमें अभी से अपनी शहरी विकास की प्रक्रिया को निर्धारित करना होगा।"

ooo

13

भास्कराचार्य द्वितीय

मधुज्योत्सना

महान भारतीय खगोलविद् एवं गणितज्ञ आर्यभट्ट की खोजों और रचनाओं का उनके बाद की पीढ़ी के भारतीय खगोल वैज्ञानिकों की पीढ़ी पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा था। उनके बाद आने वाली भारतीय खगोल वैज्ञानिकों की पीढ़ी ने उनके कार्यों को आधार बनाकर आगे के शोध प्रयोग, प्रेक्षण एवं ग्रंथों का निर्माण किया। उनके अनुयायियों ने उनके द्वारा दिखलाए गए मार्ग पर चलकर उनके काम को और आगे बढ़ाते हुए अपने उच्चस्तरीय भाष्यों के माध्यम से उनके विचारों का प्रचार–प्रसार किया है।

यद्यपि उनके प्रमुख शिष्यों में पांडुरंग स्वामी, लाटदेव, प्रभाकर एवं निःशंकु के नाम लिए जाते हैं। लेकिन भास्कराचार्य द्वितीय नामक चर्चित खगोलवैज्ञानिक ने आर्यभट्ट के सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए अनेक व्याख्याएं और भाष्य लिखे हैं। भारतीय इतिहास में भास्कराचार्य नाम के दो खगोलवैज्ञानिकों का उल्लेख मिलता है, इसमें भास्कराचार्य द्वितीय का विशेष स्थान है। इन्होंने आर्यभट्ट को प्रचारित–प्रसारित करने के अलावा उनकी रचना पर सरल भाष्य लिखकर आर्यभट्ट को अमर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भास्कर द्वितीय के नाम से चर्चित 'भास्कराचार्य' के संबंध में चर्चित विद्वान एस. बालचंद्र राव ने लिखा है कि– "भास्कर द्वारा की गई विस्तृत व्याख्या के अभाव में सूत्रात्मक गूढ़ भाषा में लिखी गई आर्यभट्ट की दुरुह कृतियों को जनसामान्य को समझने में बहुत कठिनाई होती।" भास्कराचार्य ने आर्यभट्ट की कृतियों को सरल भाष्यों में प्रस्तुत कर उन्हें जन सामान्य के लिए ग्राह्य बनाया। इसके साथ ही आर्यभट्ट के सिद्धांतों पर आधारित अपनी स्वतंत्र रचनाओं के द्वारा भी उनके काम को और आगे बढ़ाया। भास्कराचार्य की प्रमुख रचना 'महाभास्कीय' में आर्यभट्ट के प्रसिद्ध ग्रंथ *आर्यभट्ट के खगोलिकी* से संबंधित तीन अध्यायों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। एस.एन. सेन द्वारा *ए कंसाइज हिस्ट्री ऑफ साइंस इन इंडिया* में दिए गए विवरण के अनुसार इसमें निम्नलिखित आठ खंड है–

1. ग्रहों के माध्य रेखांश तथा अनिधार्य विश्लेषण;
2. रेखांश संशोधन;
3. समय, स्थान एवं दिशा, गोलीय त्रिकोणमिति, सूर्य एवं चंद्रग्रहण;
4. ग्रहों के सही रेखांश;
5. सूर्य एवं चंद्रग्रहण;
6. ग्रहों का उदय तथा अस्त होना;
7. खगोलीय नियतांक;
8. तिथि एवं विविध उदाहरण।

भास्कराचार्य ने खगोलिकीय शोध में कई नई तकनीकों का प्रयोग आरंभ किया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आर्यभट्ट ने केवल अनिधार्य विश्लेषण के नियमों का ही प्रतिपादन किया था। भास्कराचार्य ने उनके इस काम को और आगे बढ़ाते हुए विस्तृत रूप प्रदान कर, उसे खगोलिकीय अनुप्रयोगों में लगाया। भास्कराचार्य ने अपनी प्रमुख कृतियों का एक संक्षिप्त संग्रह तैयार किया। उनका यह संग्रह *लघुभास्करीय* के नाम से ज्ञात है।

भारत के इस महान खगोलिकीय गणितज्ञ का जन्म सन् 1114 ई. आधुनिक कर्नाटक के बीजापुर जनपद में हुआ था। वे एक प्रतिष्ठित विद्वान परिवार से संबंद्ध थे। उनके पिता महेश्वर भी अपने समय के चर्चित गणितज्ञ और वेदों के विद्वान थे। उनकी शिक्षा–दीक्षा उनके पिता के साथ ही अन्य विद्वानों की देख–रेख में संपन्न हुई। खगोलिकी के अतिरिक्त भास्कराचार्य को गणित में भी विशेष रुचि थी। उनकी पहली कृति *सिद्धांत शिरोमणि* सन् 1150 ई. में प्रकाशित हुई। इस ग्रंथ में उन्होंने प्राचीन भारतीय परंपराओं के अनुसार अपने गोत्र और निवास स्थल के विषय में भी लिखा है। भास्कराचार्य रचित यह ग्रंथ चार खंडों में है। इसके प्रथम खंड का नाम 'परिगणित', द्वितीय खंड का नाम 'बीजगणित', तीसरे खंड का नाम 'गणिताध्याय' और चौथे खंड का नाम 'गोलाध्याय' है। सिद्धांत शिरोमणि के पहले और दूसरे भाग क्रमशः परिगणित और बीजगणित में गणितीय विषयों पर चर्चा की गई है। बाकी के दोनों खंड ज्योतिष से संबंधित हैं।

इस ग्रंथ के परिगणित खंड में सारणियों तथा संख्या प्रणालियों की आठ परिक्रम, भिन्न, शून्य, त्रैराशिक, श्रेणी, क्षेत्रमिति, चिति (ढेरी) छाया आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। बीजगणित खंड में विशेष बातों के रूप में बताया गया है कि ऋणात्मक तथा धनात्मक संख्याओं का वर्ग धनात्मक ही होता है। इस खंड में सटीक उदाहरण देकर कर्ण निकालने की विधि बताई गई है। इस खंड में दिया एक उदाहरण इस प्रकार है– "एक बाँबी के नौ हाथ ऊपर एक मोर पक्षी बैठा है, उसने सत्ताइस हाथ की दूरी पर सांप को स्तंभ में स्थित बिल में आते हुए देखा और तिरछी चाल से चलकर उस पर झपट्टा मारा। आखिर मोर ने बिल से कितनी दूरी पर सांप को पकड़ने में सफलता पाई होगी।"

बीजगणित के क्षेत्र में भास्कराचार्य ने अद्भुत कार्य किया है। उनके द्वारा इस क्षेत्र में किए गए कार्य पर व्यापक शोधकार्य भी हुए हैं। भास्कराचार्य ने अव्यक्त संख्याओं की राशियां, वर्गों का स्वरूप, वर्ग समीकरण और उनके समाधान, घन क्षेत्रफल का उदाहरणों के माध्यम से वर्णन किया है। उन्होंने शून्य की प्रकृति व विशेषताओं की वृहद विवेचना की है। इन्होंने π का मान 3.14166 निकाला जो आधुनिक मान के बहुत पास है।

आज से हजारों वर्ष पूर्व भास्कराचार्य द्वारा प्रतिपादित अनेक सिद्धांत आज के इस कंप्यूटर युग में भी पाठ्य–पुस्तकों के माध्यम से प्रयोग में आ रहे हैं। गणिताध्याय में ग्रहों के मध्य तथा यथार्थ गतियां, समय, दिशा–संबंधी समस्याओं के साथ ही उनके हल भी दिए गए हैं। साथ ही, सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण, ग्रहों के उदय और अस्त के संबंध में भी चर्चा की गई है। गोलाध्याय में ग्रहों की गति के कारणों पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है। यंत्राध्याय में ज्योतिषीय कार्यों में प्रयुक्त होने वाले यंत्रों का वर्णन है।

अपने एक अन्य ग्रंथ *सूर्य सिद्धांत* में भास्कराचार्य ने यह स्पष्ट किया है कि पृथ्वी गोल है और सूर्य के चारों ओर एक निर्धारित मार्ग पर चलकर अनवरत परिक्रमा करती रहती है। अपने इस सिद्धांत के पक्ष में उन्होंने ठोस प्रमाण भी प्रस्तुत किए हैं।

उनकी एक अन्य कृति *कर्ण कौतूहल* जो सन् 1163 ई. में प्रकाश में आई, जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया है कि चंद्रमा की छाया से सूर्यग्रहण और पृथ्वी की छाया से चंद्रग्रहण लगता है।

भास्कराचार्य जिस काल में पैदा हुए और ज्ञान–विज्ञान में सक्रिय रहे, वह समय संक्रमण का समय था। एक ओर विदेशी आक्रमणकारी बाहर से भारतीय ज्ञान–विज्ञान को क्षति पहुंचा रहे थे तो दूसरी ओर हमारे समाज के भीतर भारी अंधविश्वास व्याप्त था। ऐसे ही समय में कट्टर और परंपरावादी अंधविश्वासियों ने यह अफवाह फैलाई थी कि पृथ्वी बिना आधार की है और वह धंसती जा रही है। इन परंपरावादियों ने यह कार्य पौराणिक ग्रंथों की गलत व्याख्या करते हुए समाज में अपने वर्चस्व के लिए दहशत फैलाने के उद्देश्य से किया

था। ऐसे समय में इस महान खगोलविज्ञानी ने अपने वैज्ञानिक दायित्व का निवर्हन करते हुए प्रमाण प्रस्तुत कर यह बताया कि "निश्चय ही पृथ्वी बिना आधार के है, लेकिन उसके चारों ओर जो ग्रह नक्षत्र आदि हैं वे अपने गुरुत्वाकर्षण से एक दूसरे को अपनी ओर खींचकर आपसी संतुलन बनाए हुए हैं। हमारी पृथ्वी ऐसी ही रहेगी और कभी भी नहीं धंसेगी।"

भारतीय ज्ञान–विज्ञान के इस अप्रतिम महापुरुष ने जो खगोलिकीय पूर्वानुमान प्रस्तुत किए थे। जब उन्हीं को पश्चिमी वैज्ञानिकों, कैपलर, ब्रूनो, गैलीलियों ने कहा तो किसी को जिंदा जला दिया गया और किसी को आजीवन कारावास में डाल दिया गया। लेकिन उन्हें बहुसंख्यक भारतीय समाज में इसे सहर्ष स्वीकार किया गया। उससे भी महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि भारतीय खगोलवैज्ञानिकों ने ये घोषणाएं पश्चिमी खगोलवैज्ञानिकों से सदियों पूर्व की थी, जो भारत के वैज्ञानिक क्षेत्र में अग्रणी होने का ठोस प्रमाण है।

भास्कराचार्य के महत्वपूर्ण खगोलिकीय विचारों की दुनिया की कई भाषाओं में प्रस्तुति हुई है। इस प्रकार महत्वपूर्ण भारतीय खगोलिकीय एवं गणितीय सूचनाएं विश्व स्तर पर मान्य हुई। सम्राट अकबर के एक दरबारी विद्वान फैजी ने भास्कराचार्य की रचना *लीलावती* का फारसी में अनुवाद किया था। इसी प्रकार सन् 1810 ई. में कोलबुक नामक एक अंग्रेज विद्वान ने इसी ग्रंथ का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। आधुनिक काल में रॉयल सोसायटी की शोध–पत्रिका ने अपने शोध–पत्र में भास्कराचार्य की प्रशंसा की है। भारत सरकार ने उनके सम्मानार्थ अपने द्वितीय अंतरिक्ष ग्रह का नाम 'भास्कर' रखा। भास्कराचार्य का निधन सन् 1171 ई. में मात्र 56 वर्ष की आयु में हुआ था।

भास्कराचार्य ने एक सत्यान्वेषी वैज्ञानिक के रूप में रूढ़ियों और अंधविश्वासों को नकारते हुए समाज में सत्य को स्थापित किया। उन्होंने अंधविश्वासों का हमेशा विरोध किया और आजीवन सत्यान्वेषण में लगे रहे। उनकी खोजों और गणनाओं ने विश्व वैज्ञानिक समाज के सम्मुख भारतीय विज्ञान का यथार्थपरक एक उन्नत स्वरूप प्रस्तुत कर देश को गौरवान्वित किया है।

ooo

वर्ष 2010 का अद्भुत जोड़

श्रीमती स्वर्ण लता शर्मा

गणित →

510	498	507	495
499	503	502	506
497	509	496	508
504	500	505	501

↓

मैजिक वर्ग

इसको बनाने में 495, 496, ... से 510 तक **के अंकों** का प्रयोग किया गया है। इनको 40 प्रकार **से जोड़** सकते हैं। हर बार इनका जोड़ 2010 आता है।

किस प्रकार देखें :–

1. 510 + 498 + 507 + 495 = 2010
2. 499 + 503 + 502 + 506 = 2010
3. 497 + 509 + 496 + 508 = 2010
4. 504 + 500 + 505 + 501 = 2010
5. 510 + 499 + 497 + 504 = 2010
6. 498 + 503 + 509 + 500 = 2010
7. 507 + 502 + 496 + 505 = 2010
8. 495 + 506 + 508 + 501 = 2010
9. 510 + 503 + 496 + 501 = 2010
10. 504 + 509 + 502 + 495 = 2010
11. 510 + 498 + 499 + 503 = 2010
12. 498 + 503 + 507 + 502 = 2010
13. 507 + 502 + 495 + 506 = 2010
14. 497 + 509 + 504 + 500 = 2010

15. 509 + 496 + 500 + 505 = 2010
16. 496 + 508 + 505 + 501 = 2010
17. 503 + 502 + 509 + 496 = 2010
18. 510 + 504 + 495 + 501 = 2010
19. 498 + 507 + 500 + 505 = 2010
20. 499 + 497 + 506 + 508 = 2010
21. 499 + 498 + 505 + 508 = 2010
22. 497 + 500 + 507 + 506 = 2010
23. 510 + 507 + 497 + 496 = 2010
24. 498 + 495 + 509 + 508 = 2010
25. 499 + 502 + 504 + 505 = 2010
26. 503 + 506 + 500 + 501 = 2010
27. 504 + 498 + 507 + 501 = 2010
28. 504 + 503 + 502 + 501 = 2010
29. 504 + 509 + 496 + 501 = 2010
30. 510 + 500 + 495 + 505 = 2010
31. 510 + 509 + 496 + 495 = 2010
32. 510 + 503 + 502 + 495 = 2010
33. 499 + 498 + 507 + 506 = 2010
34. 497 + 503 + 502 + 508 = 2010
35. 499 + 500 + 505 + 506 = 2010
36. 499 + 509 + 496 + 506 = 2010
37. 497 + 500 + 505 + 508 = 2010
38. 510 + 499 + 496 + 505 = 2010
39. 498 + 503 + 508 + 501 = 2010
40. 495 + 506 + 509 + 500 = 2010

यह एक रोचक पहेली है जिसमें 16 संख्याओं 495, 496, 497, 498, 499, 500, 501, 502, 503, 504, 505, 506, 507, 508, 509 और 510 को एक वर्ग में इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि उन्हें 40 विभिन्न प्रकार से जोड़ने से एक ही संख्या 2010 प्राप्त होती है। यह संख्याओं के संकलन का एक उत्कृष्ट नमूना है। आशा है कि विद्यार्थी वर्ग इस प्रकार की पहेलियों को रोचक पाएंगे और उनका स्वागत करेंगे।

○○○

15

विज्ञान समाचार

डॉ. दीपक कोहली

• बीस सेकंड में चार्ज हो जाएगा फोन

अब आपका फोन बीस सेकंड से भी कम समय में जार्च हो जाएगा। एक भारतीय अमेरिकी किशोरी ने इसे संभव बनाया है। कैलिफोर्निया के साराटोगा की 18 वर्षीय ऐशा खरे ने एक ऐसा अत्याधुनिक उपकरण विकसित किया है, जो आपका फोन बीस सेकंड से भी कम समय में चार्ज करने में सक्षम है। इस उपकरण की एक और दिलचस्प खासियत यह है कि यह आपके फोन की बैटरी के भीतर ही फिट हो जाएगा। इस उपलब्धि के लिए खरे को 'यंग सांइटिस्ट अवार्ड' से सम्मानित किया गया है। 'एनबीसी न्यूज' की रिपोर्ट के अनुसार 'सुपर–कैपिसिटर' के नाम से पुकारा जाने वाले यह उपकरण बहुत तेजी से चार्ज करता है और यह लंबे समय के लिए चलता भी है। यह छोटा उपकरण विकसित करने के लिए खरे को 50 हजार डॉलर से सम्मानित किया गया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी इस क्रांतिकारी खोज से तकनीकी क्षेत्र की दिग्गज कंपनी 'गूगल' का ध्यान भी आकर्षित किया है।

• बातें करने वाला रोबोट जाएगा अंतरिक्ष

अमेरिका और रूस के बाद जापान भी अंतरिक्ष में एक नया कीर्तिमान स्थापित करने की तैयारी कर रहा है। जापान इंसानों से बेधड़क बातें करने वाले रोबोट को निकट भविष्य में अपने अंतरिक्ष यात्री के साथ अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन भेजेगा। किरोबो नामक इस मशीनी एस्ट्रोनॉट की अंतरिक्ष यात्रा, ऐसा पहला अवसर होगा, जब धरती से बाहर इंसान और रोबोट के बीच संवाद होगा। जापान के दक्षिण–पश्चिम स्थित तानीगाशिमा अंतरिक्ष केंद्र से किरोबो, कौउनोत्री–4 स्पेस क्राफ्ट के जरिए अंतरिक्ष स्टेशन को प्रस्थान करेगा। जापानी अंतरिक्ष यात्री 'कोइची वकाता' भी इस मिशन का हिस्सा होंगे। 34 सेमी और 01 किलो के नन्हें किरोबो को यह नाम जापानी शब्द किबो (आशा) और रोबोट को जोड़कर दिया गया। उल्लेखनीय है कि किरोबो अंतरिक्ष में काम करने के लिए जरूरी परीक्षणों से गुजर चुका है।

किरोबो से पूछा गया कि उसका सपना क्या है? उसने कहा, वह ऐसे भविष्य की उम्मीद करता है, जहां इंसान और रोबोट एक साथ रहे और कंधे से कंधा मिलाकर काम करें। टोक्यो विश्वविद्यालय, टोयोटा और डेंट्सू इंक ने मिलकर इसे तैयार किया है। टोक्यो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर 'तोमोतोका ताकाहाशी' ने कहा कि किरोबो अंतरिक्ष यात्रियों की मदद करेगा, वहीं उसका हमशक्ल रोबोट मिराता नीचे कंट्रोल रूम में जिम्मेदारी संभालेगा। वैज्ञानिकों का मुख्य लक्ष्य किरोबो और अन्य अंतरिक्ष यात्रियों के बीच संवाद पर केंद्रित होगा। उनका कहना है कि एंड्रायड पद्धति पर बना किरोबो जब अंतरिक्ष केंद्र पर वकाता से मिलेगा तो उसे पहचान लेगा। उसे पिछली बातें भी याद रहती है।

• छींकने से खुल सकता है व्यक्तित्व का राज

आपके छींकने के तरीके से आपके व्यक्तित्व के बारे में बहुत कुछ पता चल सकता है। एक नए अमेरिकी अध्ययन में यह बात सामने आई है। शिकागो में 'स्मेल

एंड टेस्ट ट्रीटमेंट एंड रिसर्च फाउंडेशन' के संस्थापक और मनोचिकित्सक डॉ. एलेन हिर्श ने कहा कि जिस तरीके से हम छींकते हैं, उससे हमारे व्यक्तित्व के कुछ निश्चित अंश झलकते हैं। उनके मुताबिक, वह ऐसे किसी भी अध्ययन के बारे में नहीं जानते हैं, जो छींकने के विभिन्न तरीकों पर किए गए हों। हिर्श ने कहा कि छीकें हंसी के समान होती हैं। कुछ तेज होती हैं तो कुछ धीमी। यह छिपे व्यक्तित्व या चरित्र संरचना को दर्शाती है।

• सूरज की सतह से भी ज्यादा गर्म है पृथ्वी की अंदरूनी परत

पृथ्वी के केंद्र का ताप पूर्व के अनुमान और अध्ययनों के विपरीत 1000 डिग्री सेल्सियस ज्यादा है। 20 वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों ने पता लगाया था कि पृथ्वी के केंद्र या मुख्य अंदरूनी सतह का ताप 5000 डिग्री सेल्सियस है।

पृथ्वी के इस अंदरूनी हिस्से को क्रोड कहा जाता है। फ्रांस के राष्ट्रीय तकनीकी शोध संगठन और यूरोपीय नाभकीय अनुसंधान संगठन के सदस्यों द्वारा किए गए शोध से यह तथ्य सामने आया है कि पृथ्वी की अंदरूनी क्रोड का सतही ताप 6000 डिग्री सेल्सियस है।

वहीं दूसरी ओर सूरज की सतह के ताप का अनुमान 5500 डिग्री सेल्सियस है। शोध को विज्ञान के प्रतिष्ठित 'साइंस' जर्नल में प्रकाशित किया गया है। क्रोड और मेंटल सतह के ताप के अंतर के कारण ही पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र बना है। चुंबकीय क्षेत्र के निर्माण के लिए दोनों सतहों के बीच 1500 डिग्री सेल्सियस ताप का अंतर होना जरूरी है। दोनों सतहों के बीच ताप का यही अंतर धरती पर होने वाली कई हलचलों का प्रमुख कारण भी है।

• पृथ्वी पर फिर विचरण करेगा मैमथ

जूरासिक पार्क जैसे प्रयोग की बदौलत एक दिन भारी–भरकम मैमथ (बालों वाले हाथी) पृथ्वी पर विचरण करते नजर आएंगे। जमे हुए जानवर से लिए गए डीएनए की मदद से उसका खून तैयार किया गया है।

डॉली भेड़ के जनक 'सर इलान विलमूट' का कहना है कि जमे हुए जानवर से मिले डीएनए की सहायता से एक दिन इस प्राचीन जानवर को जिंदा कर लिया जाएगा। वर्ष 1996 में दुनिया की पहली क्लोन भेड़ डॉली के जन्म के साथ ही जाने–माने स्टेम सेल वैज्ञानिक विलमूट ने ही इस प्रक्रिया की शुरुआत की थी। विलमूट के मुताबिक मैमथ को भी डॉली की तरह ही क्लोन किया जाएगा। अत्याधुनिक तकनीकों के द्वारा ऊतक कोशिकाओं को स्टेम कोशिकाओं में परिवर्तित किया जाएगा, जो इस कमाल के काम को पूरा करेगा। विलमूट ने कहा कि मुझे यह योजना बहुत चुनौतीपूर्ण लगती है, लेकिन एक बात स्पष्ट है कि मैमथ से कोशिकाओं के मिलने पर पहली बाधा दूर हो जाएगी।

• बिल चुकाने को चेहरा दिखाना ही होगा काफी

क्रेडिट या डेबिट कार्ड के दिन अब जल्द ही लदने वाले हैं। अब शापिंग के लिए आपको कार्ड स्वैप करने की जरूरत नहीं पड़ेगी बल्कि आपका चेहरा भी बिल का भुगतान करने के लिए काफी होगा। फिनलैंड की एक कंपनी ने यह तकनीकी खोजी है। 'यूनिकल' नाम की कंपनी की यह तकनीकी, पहले ग्राहक के चेहरे की पहचान करती है और बाद में उसे उनके बैंक खाते से जोड़ती है। इसलिए ग्राहकों को बिल भुगतान करने के लिए कार्ड स्वैप कराने की बजाए सिर्फ कैमरे की तरफ देखने भर की ही जरूरत होती है।

यूनिकल ने यह दावा किया है कि उनकी यह सेवा सैन्य ग्रेड एल्गोरिथ्म के साथ जुड़ी होने के कारण पूरी

तरह सुरक्षित है। कंपनी के रुसलान पिसारेंको ने कहा कि यह तकनीकी अगले महीने से काम करना शुरू कर देगी और इसमें तुरंत लेन–देन का काम करने की क्षमता है। साथ ही यह जुड़वां लोगों में भी अंतर कर सकती है। पिसारेंको के अनुसार वैसे तो चेहरा ही पिन नंबर होगा और एक व्यक्ति को पहचानने के लिए यह बिल्कुल सही तरीका है मगर कुछ मामलों में जहां यह पद्धति सौ प्रतिशत सटीक नहीं होगी, वहां पर व्यक्ति को पिन नंबर डालने को कहा जा सकता है। इस पद्धति के आने के बाद न तो जेब में पर्स रखने की जरूरत होगी और न ही किसी तरह के कार्ड की कोई आवश्यकता होगी। ग्राहक अपनी पहचान और बैंक विवरण देकर अपना पंजीकरण करा सकते हैं।

• असली यादों की जगह प्रत्यारोपित की गई झूठी यादें

किसी के दिमाग में मौजूद असली यादों की जगह झूठी यादें प्रत्यारोपित करने की वैज्ञानिक कल्पना को वैज्ञानिकों ने सच कर दिखाया है।

अमेरिका में 'मैसाच्युसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी' के शोधकर्ता चूहों के दिमाग में झूठी स्मृतियां प्रत्यारोपित करने में सफल रहे हैं। इस प्रयोग में उन्होंने चूहे के दिमाग में उन कोशिकाओं को योजनाबद्ध किया जो स्मृतियों को नियंत्रित करती हैं। इसके बाद वे चूहों की स्मृतियों को सफलतापूर्वक बदलने में सक्षम हो गए। दरअसल झूठी या नकली स्मृतियाँ रचने की प्रक्रिया को 'इंसेप्शन' कहा जाता है। इसका शादिब्क अर्थ है सूत्रपात या शुरुआत करना। शोधकर्ताओं ने प्रयोग के तहत चूहों के दिमाग में रोशनी का संचार करने के लिए ऑप्टिकल फाइबर का जाल बिछाया। इसके बाद उन्होंने चूहों को नीले रंग के प्रकाश वाले बक्से में रखा। इस दौरान उनके दिमाग में ऑप्टिकल फाइबर के जरिए नीली रोशनी की याद को स्थापित किया गया। जब वे नीले रंग की रोशनी की याद में खोए थे उनके पैरों में बिजली के झटके दिए गए। इसके बाद जब उन्हें नीले रंग के प्रकाश वाले बक्से में वापस रखा गया तो वे डर गए।

• अब कृत्रिम यकृत (जिगर) करेगा काम

उन लोगों के लिए खुशखबरी है, जिनके जिगर (यकृत) ने काम करना बंद कर दिया है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह कृत्रिम यकृत ठीक वैसे ही काम करेगा, जैसा कार्य एक कुदरती स्वस्थ यकृत करता है।

यकृत से संबंधित विभिन्न बीमारियों के कारण लिवर पात (फ़ेल्यर) के रोगियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। ऐसे रोगियों के लिए अमेरिका के मैसाच्युसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के शोधकर्ता वैज्ञानिकों ने हाल में यह उम्मीद जताई है कि निकट भविष्य में लिवर पात (liver failure) के रोगियों के लिए कृत्रिम यकृत का प्रत्यारोपण एक कारगर विकल्प होगा। अभी तक चिकित्सकीय व अन्य औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद आदाता व्यक्ति के लिवर को लिवर पात से पीड़ित व्यक्ति में प्रत्यारोपित किया जाता है। कृत्रिम यकृत के निर्माण से संबंधित शोधकर्ताओं की एक टीम में शामिल भारतीय मूल की सदस्या संगीता भाटिया की इस संदर्भ में टिप्पणी गौरतलब है। संगीता भाटिया के अनुसार अगर यकृत के किसी भाग को निकाल दिया जाता है, तो यह अपने निकाले गए भाग के पुनः निर्माण की प्रक्रिया शुरू कर देता है। शोधकर्ताओं ने यकृत के निकाले गए भाग के पुनः निर्माण की प्रक्रिया शुरू कर देता है। शोधकर्ताओं ने यकृत के निकाले गए भाग को शरीर से बाहर प्रयोगशाला में कृत्रिम यकृत ऊतकों (लिवर टिश्यूज) को विकसित करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में उन्हें आशातीत सफलता मिल रही है।

• जल्दी सोइए, अच्छे अंक लाइए

अगर आपका बच्चा रात में देर तक जागता है तो सावधान हो जाइए। उसकी इस आदत को बदल दीजिए क्योंकि रात को देर तक जगने की बच्चे की यह

आदत उसके दिमाग पर गलत असर डाल सकती है। जी हाँ, एक ताज़ा शोध कहता है कि अगर बच्चे रात को देर से सोते हैं तो इससे उनके दिमाग पर असर पड़ सकता है।

ब्रिटेन में सोने की आदतों और दिमाग की क्षमता के बीच संबंध पर इस शोध में सात साल की उम्र के 11 हजार से ज्यादा बच्चों पर अध्ययन किया गया। जिन बच्चों का रात को सोने का कोई नियमित समय नहीं था या जो रात को देर से सोते थे, वो पढ़ने में और खासकर गणित में कमजोर पाए गए।

शोधकर्ताओं के अनुसार नींद की कमी से एकतरफ तो शरीर की लय बिगड़ सकती है तो दूसरी तरफ नई बातें सीखने की इन बच्चों की क्षमता पर जानकारी जुटाई और ये जानने की भी कोशिश की कि क्या इस क्षमता का नींद से कोई संबंध है।

अध्ययन में यह पाया गया कि जिन बच्चों का सोने का समय निश्चित नहीं था उनके अंक रीडिंग, गणित और सामान्य ज्ञान की परीक्षा में अपने बाकी साथियों से कम आए।

देर से सोने की आदत का बुरा असर लड़कों से ज्यादा लड़कियों में देखा गया। यह भी पाया गया कि लड़कियों में इस तरह की परेशानियां आगे भी रहीं। यूनिवर्सिटी कॉलेज लंदन की प्रोफेसर 'अमांडा सैकर' के नेतृत्व में शोधकर्ताओं की टीम ने बताया कि यह भी संभव है कि सोने की अनियमित दिनचर्या परिवार में अशांत माहौल के कारण हो।

ooo

लेखक-परिचय

1. डॉ. हेमलता पंत
वैज्ञानिक, सोसाइटी ऑफ बॉयलाजिकल
साइंसेज एंड रूरल डेवलपमेंट
10/96, गोला बाजार, नई झूसी
इलाहाबाद–211019 (उ.प्र.)

2. डॉ. विजय कुमार उपाध्याय
कृष्णा इन्क्लेव, राजेंद्र नगर
पोस्ट जमगढ़िया, वाया जोधाडीह पास
जिला बोकारो, झारखंड–827013

3. नवनीत कुमार गुप्ता
परियोजना अधिकारी
विज्ञान प्रसार (विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग)
सी–24, कुतुब संस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली–110016

4. डॉ. ललित कुमार मिश्र
134/27/3एम/6, मुनई का पुरा
तेलियारगंज, इलाहाबाद–211019 (उ.प्र.)

5. डॉ. दिनेश मणि
पूर्व संपादक 'विज्ञान'
35/3, जवाहरलाल नेहरू रोड
जार्ज टाउन, इलाहाबाद--211002

6. डॉ. दिलीप कुमार मौर्य
ईशान स्टूडियो, दुकान सं. 20
श्री विश्वनाथ मंदिर, काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005 (उ.प्र.)

7. डॉ. इंदु भूषण पांडेय
वरिष्ठ वैज्ञानिक (सस्य)
तिरहुत कृषि महाविद्यालय, ढोली
मुजफ्फरपुर, बिहार–843121

8. डॉ. जे. एल. अग्रवाल
3, ज्ञान लोक, मयूर विहार, ई–ब्लॉक,
शास्त्री नगर, मेरठ–250004 (उ.प्र.)

9. डॉ. दिनानाथ शुक्ला
पूर्व विभागाध्यक्ष (सस्य)
विज्ञान विभाग, काशी हिंदु विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005 (उ.प्र.)

10. डॉ. आर. एस. सेंगर
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं
प्रौद्योगिक विश्वविद्याल, मेरठ–250010

11. श्री अमित कुमार
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं
प्रौद्योगिक विश्वविद्याल, मेरठ–250010

12. डॉ. दीपक कोहली
5/104, विपुल खंड, गोमती नगर
लखनऊ–226010 (उ.प्र.)

13. डॉ. दुर्गादत्त ओझा
"गुरू कृपा", ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा
जोधपुर–342001 (राजस्थान)

14. श्री जगनारायण
हिंदी विज्ञान संचारक
ईशान स्टूडियों, दुकान नं. 20
श्री विश्वनाथ मंदिर काशी हिंदू
विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005 (उ.प्र.)

15. मधु ज्योत्सना
ईशान स्टूडियों, दुकान नं. 20
श्री विश्वनाथ मंदिर काशी हिंदू
विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005 (उ.प्र.)

16. श्रीमती स्वर्ण लता शर्मा
केंद्रीय विद्यालय, रेलवे हरताला कॉलोनी
मुरादाबाद, (उ.प्र.)

○○○

आयोग के प्रकाशन

बृहत पारिभाषित शब्द-संग्रह

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : विज्ञान खंड 1,2 (अंग्रेजी-हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1994, पृ. 2058)	713	174.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : विज्ञान खंड 1,2 (अंग्रेजी-हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1990, पृ. 2058)	684	150.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : मानविकी और सामाजिक खंड 1,2 (अंग्रेजी-हिंदी) (परिवर्धित संस्कारण 1992, पृ. 1297)	706	292.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : 2 मानविकी और सामाजिक विज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 650)	758	350.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एंव इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)(1986, पृ 240)	568	48.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : कृषि विज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी)(पुनर्मद्रुण 1991, पृ 223)	695	278.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी (अंग्रेजी-हिंदी)(1991, पृ 104)	692	48.50
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान, शारीरिक नृविज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी)(1991, पृ 693)	698	239.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : पशुचिकित्सा (अंग्रेजी-हिंदी)(1994, पृ 172)	718	82.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : विज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी)(द्वितीय संस्करण 1997, पृ 819)	757	236.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत, यांत्रिकी)(अंग्रेजी-हिंदी)(पुनर्मुद्रण 1999, पृ 566)	692	340.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : प्राणिविज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी)(2003, पृ 526)	885	311.00

विषयवर शब्द-संग्रह/संग्रह/शब्दावली/परिभाषा कोश

अर्थशास्त्र

अर्थमिति परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1980, पृ. 245)	499	17.00
अर्थशास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1989, पृ. 232)	665	117.00
अर्थशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2003, पृ. 110)	843	185.00
अर्थशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003, पृ. 144)	824	183.00
अर्थशास्त्र शिक्षार्थी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 60)	918	137.00
अर्थशास्त्र मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 139)	--	नि:शुल्क*

आयुर्विज्ञान

आयुर्विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 488)	805	450.00
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी) (2002, पृ. 333)	812	279.00
आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (शल्य विज्ञान) (अंग्रेजी-हिंदी) (2004, पृ. 407)	8471	338.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
आयुर्विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया) (2005, पृ. 613)	--	नि:शुल्क*
आयुर्विज्ञान प्रतिकूल प्रतिक्रिया शब्दावली (2009, पृ. 196)	907	273.00
आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (संस्कृत-अंग्रेजी) (2010, पृ. 207)	925	260.00
आयुर्विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 462)	927	517.00
रोग निदान एवं विकृति शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2011, पृ. 419)	926	401.00
आयुर्विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (पृ. 261)	943	मुद्रणाधीन
इंजीनियरी		
सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1991, पृ. 112)	709	61.00
रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 167)	739	51.00
विद्युत इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 156)	773	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1999, पृ. 135)	696	94.00
पर्यावरण इंजीनियरी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 88)	--	नि:शुल्क*
यांत्रिक इंजीनियरी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2008, पृ. 134)	--	नि:शुल्क*
इतिहास		
इतिहास परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1982, पृ. 297)	548	20.50
इतिहास शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 300)	813	404.00
कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी		
कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1992, पृ. 144)	702	102.00
कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1995, पृ. 147)	714	57.00
कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 115)	--	नि:शुल्क*
दूरसंचार की मूलभूल शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 191)	--	नि:शुल्क*
कंप्यूटर विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोड़ो) (2002, पृ. 121)	836	78.00
सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2005, पृ. 393)	884	231.00
प्रसारण तकनीकी शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 148)	905	310.00
कला और संगीत		
पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1984, पृ. 95)	569	28.55
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2006, पृ. 254)	888	202.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2006, पृ. 171)	889	75.00
कृषि		
रेशम विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 85)	733	50.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 185)	--	75.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
कृषि कीट विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 213)	751	75.00
मृदा विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 149)	756	77.00
वानिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2007, पृ. 437)	896	447.00
कृषि विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2008, पृ. 127)	--	नि:शुल्क*
गणित		
गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 357)	728	143.00
गणित की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 135)	--	नि:शुल्क*
गणित परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 333)	822	203.00
सांख्यिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) Out of Stock	--	18.00
गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 105)	814	189.00
गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2003, पृ. 152)	852	335.00
गुणता नियंत्रण		
गुणता नियंत्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (1996, पृ. 67)	729	38.00
गृहविज्ञान		
गृह विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 144)	750	60.00
गृह विज्ञान शब्द-संग्रह शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 148)	--	नि:शुल्क*
जीव विज्ञान		
सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1977, पृ. 287)	497	24.00
पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1990, पृ. 161)	691	80.50
वनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश (संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण) (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 204)	752	75.00
पादप आनुवंशिक परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 185)	753	75.00
सूक्ष्मजैविकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 193)	755	45.00
कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 197)	742	62.00
पादप रोग विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 138)	768	75.00
वनस्पतिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 266)	760	86.00
सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2000, पृ. 263)	785	125.00
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2000, पृ. 321)	790	121.00
कोशिका तथा अणुजैविकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 316)	796	348.00
प्राणिविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 540)	803	216.00
प्राणिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 204)	810	205.00
वनस्पतिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 185)	842	208.00
पर्यावरण विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2004, पृ. 429)	870	381.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
प्राणिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो) (2007, पृ. 184)	897	417.00
प्राणिविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2008, पृ. 247)	--	नि:शुल्क*
पर्यावरण विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 160)	--	नि:शुल्क*
वनस्पतिविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 162)	--	नि:शुल्क*
जीवविज्ञान शिक्षार्थी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 294)	922	212.00
पर्यावरण विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (पृ. 348)	938	मुद्रणाधीन
दर्शनशास्त्र		
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड-1 (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 170)	775	151.00
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड-2 (अंग्रेजी-हिंदी) (1999, पृ. 230)	779	124.00
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड-3 (अंग्रेजी-हिंदी) (1999, पृ. 340)	780	136.00
दर्शन शास्त्र शब्द संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 160)	821	61.00
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2003, पृ. 331)	850	198.00
पत्रकारिता		
पत्रकारिता परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1990, पृ. 164)	681	87.00
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 184)	767	12.25
पुरात्व विज्ञान		
पुरात्व विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1994, पृ. 453)	711	509.00
पुरात्व और वास्तुकला की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 68)	--	नि:शुल्क*
पुरात्व विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003)	--	157.00
पुरात्व विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2003, पृ. 78)	846	157.00
पुस्तकालय विज्ञान		
पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1987, पृ. 186)	593	49.00
पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 220)	912	375.00
प्रशासन		
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 400)	840	390.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिन्दी-बोडो) (2007, पृ. 549)	899	720.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण 2008, पृ. 511)	900	20.00
मूलभूत प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2008, पृ. 202)	--	नि:शुल्क*
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (पुनर्मुद्रण 2010, पृ. 479)	935	20.00
प्रबंध विज्ञान		
प्रबंध विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1991, पृ. 191)	700	170.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
मनोविज्ञान		
मनोविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2000, पृ. 116)	794	247.00
मनोविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 86)	468	नि:शुल्क*
मनोविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 470)	820	108.00
मनोविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (पृ. 533)	941	मुद्रणाधीन
भाषा विज्ञान		
भाषा विज्ञान कोश-खंड-1 (अंग्रेजी-हिंदी) (1989, पृ. 212)	664	89.00
भाषा विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (1992, पृ. 249)	707	113.00
भाषा विज्ञान कोश-खंड-2 (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 295)	764	59.00
भूगोल		
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1990, पृ. 361)	663	231.00
भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 369)	736	200.00
भूगोल मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 156)	--	नि:शुल्क*
भूगोल परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) Out of Stock	--	10.00
मानव भूगोल परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) Out of Stock	--	18.00
प्राकृतिक विपदा शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2000, पृ. 202)	791	17.00
जलवायु विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 204)	801	131.00
भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2002, पृ. 426)	833	515.00
भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003)	--	515.00
भूविज्ञान		
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1992, पृ. 188)	733	173.00
शैलीविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1993, पृ. 168)	708	153.00
भूविज्ञान शब्द-कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 328)	727	88.00
भूविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 284)	726	63.00
खनन एवं भूविज्ञान शब्द संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 128)	737	32.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 48)	734	15.00
भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 141)	--	नि:शुल्क*
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 60)	765	13.50
कोयला उद्योग की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1999, पृ. 64)	--	नि:शुल्क*
आर्थिक भूविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 70)	829	75.00
भूभौतिकी शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 60)	830	67.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
शैलविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 185)	729	82.00
खनिज विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 174)	818	130.00
अनुपयुक्त भूविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 155)	817	115.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 69)	826	73.00
जीवाश्म विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 181)	827	129.00
भूविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003)	827	129.00
भूविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2003, पृ. 284)	844	306.00
भौतिकी		
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1985, पृ. 76)	--	10.00
अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1994, पृ. 138)	717	45.00
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 536)	741	119.00
भौतिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 953)	804	700.00
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 163)	806	203.00
अर्धचालक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2006, पृ. 41)	890	140.00
इलेक्ट्रॉनिकी शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2007, पृ. 98)	893	349.00
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो) (2007, पृ. 322)	898	652.00
भौतिकी शिक्षार्थी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 102)	917	219.00
भौतिकी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (पुनर्मुद्रण 2010)	--	नि:शुल्क*
प्लाज्मा भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2011, पृ. 187)	930	1589.00
रसायन		
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1978, पृ. 557)	611	17.00
इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1988, पृ. 357)	661	55.00
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1988, पृ. 272)	--	25.00
धातुकर्म परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 449)	731	278.00
रसायन शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003, पृ. 112)	823	137.00
रसायन शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2005, पृ. 918)	855	592.00
रसायन शिक्षार्थी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 83)	920	84.00
रसायन मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 140)	--	नि:शुल्क*
राजनीति विज्ञान		
राजनीति विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1991, पृ. 356)	697	343.00
राजनीति विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 121)	815	186.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
राजनीति विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2003, पृ. 127)	847	211.00
राजनीति विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2003, पृ. 67)	--	नि:शुल्क*
रक्षा		
समेकित रक्षा शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1993, पृ. 343)	699	284.00
लोक प्रशासन		
लोक प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1995, पृ. 98)	721	52.00
वाणिज्य		
वाणिज्य परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1978, पृ. 173)	498	24.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1992, पृ. 172)	698	259.00
पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2000, पृ. 185)	786	79.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया) (2000, पृ. 188)	811	162.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-बोडो) (2000, पृ. 169)	835	194.00
वाणिज्य मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2013, पृ. 134)	--	नि:शुल्क*
शिक्षा		
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-1 (अंग्रेजी-हिंदी) (1978, पृ. 197)	493	13.50
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-2 (अंग्रेजी-हिंदी) (1989, पृ. 205)	680	99.00
शिक्षा शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 151)	809	137.00
शिक्षा शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2002, पृ. 82)	834	97.00
समाज शास्त्र		
समाज कार्य परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1978, पृ. 183)	496	16.25
समाज शास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1987, पृ. 199)	570	71.40
समाज शास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003)	--	118.00
समाज शास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2003, पृ. 74)	841	118.00
अन्य		
अंतरराष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1994, पृ. 295)	715	344.00
संसदीय कार्य शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2008, पृ. 87)	901	130.00

* ये मूलभूत शब्दावलियां आयोग द्वारा आयोजित कार्यक्रमों (कार्यशालाएं/संगोष्ठियाँ/प्रशिक्षण कार्यक्रम/अभिविन्यास कार्यक्रम) में वितरित की जाती है।

संदर्भ-ग्रंथ

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
कृषिजन्य दुर्घटनाएं (1983, पृ. 212)		25.00
विश्व के प्रमुख धर्म (1984, पृ. 293)	571	118.00
विकास मनोविज्ञान भाग-1 (		40.00
विकास मनोविज्ञान भाग-2 (		30.00
बाल मनोविकास (1985, पृ. 252)	572	58.00
इलेक्ट्रॉनिक मापन (1986, पृ. 193)	587	31.00
सैन्य विज्ञान पाठ संग्रह (1987, पृ. 282)	601	100.00
द्रवचालित मशीन (1987, पृ. 579)	584	66.50
सूक्ष्म तरंग मशीन (1989, पृ. 335)	679	470.00
लोहीय तथा अलोहीय धातु (1989, पृ. 178)	666	68.00
लैटर प्रैस मुद्रण (1990, पृ. 407)	690	270.00
विश्व के प्रमुख दार्शनिक (1990, पृ. 696)	685	433.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी (1995, पृ. 452)	720	995.00
ऐतिहासिक नगर (1996, पृ. 145)	723	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर (1996, पृ. 121)	724	109.00
समुद्री यात्राएँ (1996, पृ. 90)	725	79.00
वैज्ञानिक शब्दावली : अनुवाद एवं मौलिक लेखन (1996, पृ. 274)	730	34.00
विश्व दर्शन (1997, पृ. 115)	759	53.00
अपशिष्ट प्रबंधन (1998, पृ. 53)	761	17.00
कोयला : एक परिचय (1998, पृ. 122)	772	294.00
रत्न विज्ञान : एक परिचय (1999, पृ. 169)	776	115.00
पर्यावरणीय प्रदूषक : नियंत्रण तथा प्रबंधन (1998, पृ. 154)	766	23.25
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग तथा प्रबंधन (1998, पृ. 65)	762	40.00
2 दूरीक एवं 2 मानकित समष्ठियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन (1999, पृ. 94)	783	68.00
भारत में प्याज एवं लहसन की खेती (1999, पृ. 137)	782	82.00
पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग (1999, पृ. 208)	781	60.00
मृदा-उर्वरता (2000, पृ. 537)	798	410.00
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण (2000, पृ. 136)	789	105.00
पशुओं के कवकीय रोग, इनका उपचार एवं नियंत्रण (2000, पृ. 179)	787	93.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
पराज्यामितीय फलन (2000, पृ. 101)	793	90.00
भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण (2001, पृ. 671)	799	343.00
भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबधन (2001, पृ. 485)	792	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन (2001, पृ. 458)	795	559.00
सामाजिक एवं प्रक्षेत्र वानिकी (2001, पृ. 280)	796	54.00
समकालीन भारतीय दर्शन के कुछ मानववादी चिंतक : तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन (2002, पृ. 189)	806	153.00
स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन (2002, पृ. 157)	805	176.00
भारतीय कृषि का विकास (2002, पृ. 206)	831	155.00
कोयला : एक परिचय (परिवर्धित संस्करण 2003, पृ. 219)		
भविष्य की आशा : हिंद महासागर (2003, पृ. 219)	856	154.00
इस्पात परिचय (2003, पृ. 85)	853	146.00
जैव-प्रौद्योगिकी : अनुसंधान एवं विकास (2003, पृ. 82)	848	134.00
पृथ्वी : उद्भव और विकास (2003, पृ. 150)	849	86.00
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (2003, पृ. 87)	854	90.00
प्राकृतिक खेती (2004, पृ. 149)	867	167.00
हिंदी विज्ञान पत्रकारिता : कल, आज और कल (2004, पृ. 172)	869	167.00
मानसून पवन : भारतीय जलवायु का आधार (2004, पृ. 85)	870	112.00
हिंदी में स्वतंत्रता परवर्ती विज्ञान लेखन (2004, पृ. 219)	868	280.00
विश्व के प्रमुख धर्मों में धर्मसमभाव की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन (2005, पृ. 465)	883	490.00
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन (2006, पृ. 253)	887	214.00
मृदा एवं पादप पोषण (2006, पृ. 331)	885	367.00
नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी (2006, पृ. 334)	886	398.00
पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन (2006, पृ. 263)	891	367.00
पृथ्वी से पुरातत्व (		40.00
भारत के सात आश्चर्य (2009, पृ. 66)	900	335.00
पादप सुरक्षा के विविध आयाम (2010, पृ. 285)	916	360.00
पादप सुरक्षा एवं पौधशाला प्रबंधन (2010, पृ. 231)	915	403.00
खनि आयोजना के सिद्धांत और अनुप्रयोग (पृ. 362)	940	मुद्रणाधीन
मृदा संरक्षण एवं प्रबंधन (पृ. 261)	943	मुद्रणाधीन

○○○

ग्राहक फार्म

सेवा में :
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली- 110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए .....से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .....दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....

पूरा पता .....

.....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क :	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83	डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 8.00	पौंड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50	डालर 2.88

डिमांड ड्राफ्ट ''अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग'' के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करे:

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/ श्रीमती/ श्री..... इस विद्यालय/ म्हाविद्यालय/ विश्वविद्यालय के ..... विभाग का छात्र/ की छात्रा है।

हस्ताक्षर

(प्राचार्य/ विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉर्वर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें सड़क परिवहन से भेजी जाती हैं तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. सड़क परिवहन से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके स्वयं पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नहीं होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में अन्य पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय के पीछे सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड्ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली - 110001
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001
6.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली - 110003
7.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, शाहजहां रोड धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001

GMGIPMRND—2201CSTT(CRC)—13-08-2015.

© भारत सरकार
प्रकाशन-नियंत्रक

संयुक्तांक-91 पी॰सी॰एस॰टी॰टी॰ (10-12) 2014
800

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
महाप्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित।